मुख्याधिकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के शुद्धाचारी पूज्य श्री खुबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप श्रीने मुझे साथ ले महा परिश्रम से हैदराबाद जैसा बड़ा क्षेत्र साधुमार्गीय धर्म में प्रसिद्ध किया व परमोपदेश से राजाबहादुर लालाजी सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी को धर्मप्रेमी बनाये उनके प्रतापसे ही शास्त्रोद्धार महा कार्य हैदराबाद में हुए इस लिये इस कार्य के मुख्याधिकारी आपही हुए जो जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महालाभ प्राप्त करेंगे वे आपही के कृतज्ञ होंगे

उपकारी महात्मा

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्य पाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज!

आप श्री की आज्ञासे ही शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार किया और आपके परमाशिर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस कार्य के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

कच्छ देश पावन कर्ता आठों पक्ष के परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्यवर्य महात्मा कविवर्य श्री नागचन्दजी महाराज!

इन शास्त्रोद्धार कार्य में आद्योपान्त आप श्री मार्जन शुद्ध प्राप्त हुवी, गुरुका और समयस्पर धारणशील शुभ सम्मति द्वारा सहस इसे रहनसेही मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका इस लिये फक्त मैं ही नहीं परन्तु जो जो भव्य इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

मुद्राधारी पूज्य श्री सुखा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य, आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्यवर्य बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज! आपने बड़े साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले कार्य का जिस उत्साहसे स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश कार्य को अच्छा बनाया के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और ऐसा सरल बनादिया कि कोई भी हिन्दी भाषी सहज में समझ सके, ऐसे ज्ञानदान के महा उपकार तले दबे हुवे हम आप के बड़े आभारी हैं

सबकी तर्फ से

भारी छती ऋद्धि का त्याग कर हैद्राबाद नीक प्रान्तमें दीक्षा धारक बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजीके शिष्यवर्य ज्ञानानंदी श्री देव ऋषिजी वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाको बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुखोपचार का संयोग मिला के सदैव का व्याख्यान, प्रसंगोंमें वार्तालाप कार्य दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया, जिस से ही यह महा कार्य इतना शीघ्रता से सम्यक पूर्ण हुआ इस लिये इस कार्य बदल उक्त मुनिवरों का भी बड़ा उपकार है

पंजाब देश पावन करता पूज्य श्री सोहन लालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी, तपस्वीजी माणकचन्दजी, कविवर श्री अमी ऋषिजी, सुवक्ता श्री दौलत ऋषिजी पं श्री नथमलजी पं श्री जोरावरमलजी कविवर श्री नानचन्द्रजी प्रवर्तिनी सतीजी श्री पार्वतीजी गुणज्ञ सतीजी श्री रंभाजी धोराजी सर्वज्ञ भंडार भीनासरवाले कनीरामजी बहादरमलजी बांठीया, लींबडी भंडार, कुचेरा भंडार, इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इस कार्य को बहुत सहायता मिली है इस लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं

भारत इलाबाद निवासी औदरी वर्ग में श्रेष्ठ दृढधर्मी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहब श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी!

आपने साधु सेवा के और ज्ञान दान जैसे महा भाव के स्वामी बन साधुमार्गीय जैन धर्म के परम माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों का हिन्दी भाषानुवाद मुद्रित कराने का रु २००००, का खरच अमूल्य देना स्वीकार किया और यूरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव में वृद्धि होने से रु ४०००० के खर्च में भी काम पूरा होना सम्भव नहीं होने भी आपने उस ही उत्साह से काम को समाप्त कर सबको अमूल्य लाभ दिया यह आप की उदारता साधुमार्गीयों को गौरव रूपक व सम्मानीय है!

मालवा (काठियावाड़) निवासी जैन धर्मी कार्यदक्ष कृतज्ञ मणिलाल शिवलाल शाह! इनोंने जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम में संस्कृत प्राकृत व अंग्रेजी का अभ्यास कर तीन वर्ष उपदेशक रह अच्छी कौशल्यता प्राप्त की इन से शास्त्रोद्धार का कार्य अच्छा होगा ऐसी सूचना गुरुवर्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज से मिलने से इन को बोलाये इनोंने अन्य प्रेस में शुद्ध अच्छा और शीघ्र काम होता नहीं देख शास्त्रोद्धार प्रेस कायम किया और प्रेस क कर्मचारियों को उत्साही कार्य दक्ष बना काम लिया वैसे ही भाषानुवाद की प्रेसकॉपी बनाई यद्यपि यह मासिक पगार से रहे थे तथापि इनोंने इस कार्य की सेवा वेतन के प्रमाण से अधिक की इस लिये इनको भी धन्यवाद देते हैं

दशवैकालिक सूत्र की प्रस्तावना

प्रणमामि श्री महावीर, सूत्रार्थ उद्धारक ॥ दशवैकालिक सूत्रस्य, वक्षे भाषानुवादक

सूत्रार्थ के प्रकाशक श्रीमहावीर भगवान को नमस्कार कर के दशवैकालिक सूत्र का हिन्दी भाषानुवाद करता हुं ॥ १ ॥ यह चार मूल सूत्रों में का प्रथम मूल सूत्र है इस में साधु के मूलाचार का संक्षेप में सम्यक प्रकार कथन किया है चौथे आरे में प्रथम साधुओं को आचारांग सूत्र पढाया जाता था इस वक्त प्रज्ञा की तथा आयुष्य की न्यून होने से प्रथम दशवैकालिक सूत्र पढाने का रिवाज आचार्यने स्थापन किया है कितनेक कहते हैं कि भगवन्त महावीर स्वामीजी के आठवे पाट पर स्वयंभवाचार्यने अपने पुत्र बालक को दीक्षा दे फक्त छ महिने का ही आयुष्य बाकी रहा जान उस के पढाने के लिये आचार प्रवादादि पूर्व में से उद्धार कर दशवैकालिक सूत्र नया ही बनाया है परंतु ऐसा नहीं है, दशवैकालिक नाम नन्दीजी में और नन्दीजी का नाम भगवती आदि अंग में होने से इग्यारा अंग की तरह यह भी अनादी है हां स्वयंभवाचार्य की वक्त से प्रथम दशवैकालिक पढाने का रिवाज चालू हुवा होगा इस दशवैकालिक का उतारा मुख्यता में तो हा० जीवराज घेलाभाइ की तरफ से छपी हुई प्रत पर से किया और गौणता में मेरे पास की चार प्रतों पर से किया है इस में जो कुछ अशुद्धियों रह गई है उसे विद्वानों शुद्ध कर पठन कीजीये

दशवैकालिक सूत्र की अनुक्रमणिका

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजी ने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिंदी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रों की १०००-१००० प्रतों को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादूर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को उस का अमूल्य लाभ दिया है !

॥अष्टाविंशतितम दशवैकालिक सूत्र-प्रथम मूल॥

॥ द्रुमपुष्पिका नामक प्रथम अध्ययनम् ॥

(गाथा)—धम्मो मगल मुक्कट्ठ अहिंसा सजमो तवो॥ देवावि त नमसंति, जस्स धम्मे

सब प्रकार के मंगल में धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है, ऐसे धर्म के तीन भेद कहे हैं १ अहिंसा-षट्काया के जीवोंका संरक्षण करना, २ संयम आश्रवका निरुधन करना, और ३ तप-अनशन अवमोदर्यादि द्वादश प्रकार के तप से शरीर को तपाना इस प्रकार के धर्म में जिन का मन सदैव प्रवर्तता है उनको देवताभी नमस्कार करते हैं यहां अपि शब्द से चक्रवर्ती वगैरह मनुष्य के नमस्कार करने का समावेश हो जाता है मंगलिक के पांच भेद अन्य स्थान किये गये हैं १ शुद्ध मंगलिक सो पुत्रादिक का जन्म, २ अमंगलिक सो गृहादिक नये बनाना, ३ चमत्कार मंगलिक सो विवाह प्रमुख, ४ क्षय मंगलिक सो धनादि और ५ सदा मंगलिक सो सब जीवोंकी रक्षा करने रूप धर्म करना इन पांच में से यह पांचवा धर्म मंगलिक उत्कृष्ट है इस से

दशवैकालिक सूत्र की अनुक्रमणिका

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलकऋषिजी ने सीर्फ तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिंदी भाषानुवाद किया, उन ३२ ही शास्त्रों की १०००-१००० प्रतों को सीर्फ पांच ही वर्ष में छपवाकर दक्षिण हैद्राबाद निवासी राजा बहादूर लाला सुखदेवसहायजी ज्वालाप्रसादजी ने सब को उस का अमूल्य लाभ दिया है।

अहागडेसु रीयते, पुप्फेसु भमरो जहा ॥ ४ ॥ महुकार समाबुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ॥ नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥ ५ ॥ त्तिबेमि ॥ इति दुमपुप्फिया नाम पढम अज्झयण सम्मत्त ॥ १ ॥ * * * *

दोष नहीं इस शंका का समाधान करते हैं कि हम ऐसी वृत्ति से आहार आदि प्राप्त करते हैं कि जिस से कोइ भी जीव की घात होवे नहीं सो वृत्ति कहते हैं—जैसे भ्रमर पुष्पों पर परिभ्रमण करता है, वैसे ही साधु भी गृहस्थन अपने लिये बनाया हुआ आहार के लिये ईर्या समिति सहित जाते हैं ॥४॥ अब शिष्य प्रश्न करता है कि साधु किस को कहना? उत्तर—भ्रमर समान वृत्ति वाले, तत्व के ज्ञाता, कुलादिक का प्रतिबंध रहित, विविध घरों के पिण्ड में रक्त और दमितेन्द्रिय जो होते हैं वे ही साधु कहाते हैं ॥ ५ ॥ ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसे भगवान महावीर स्वामी से मैंने सुना है वैसे ही तेरे से मैं कहता हूं यह द्रुम पुष्प के दृष्टांत का प्रथम अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १ ॥ + ×

सया भणो ॥ १ ॥ जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ॥ नय पुप्फ किलामेइ, सोयपीणेइ अप्पयं ॥ २ ॥ एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ॥ विहंगमाव पुप्फेसु, दाण भत्तेसणेरया ॥ ३ ॥ वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मई ॥

यहां इस का ही मंगलाचरण किया है ॥ १ ॥ ऐसे धर्म के आराधक साधु होते हैं, वे किस प्रकार के आहारादिक से अपनी उपजीविका करते हैं सो भ्रमरके दृष्टान्त से बताते हैं—जैसे भ्रमर वृक्ष के पुष्प में रहे हुवे रसबिन्दुओं का मर्यादा से पान करता है इस तरह पान करते हुवे वह भ्रमर पुष्प को किसी तरह किलामना नहीं करता है और वह अपना आत्मा को तृप्त करलेता है इस दृष्टांत को सिद्ध करते हैं—वृक्ष समान ग्रामादिक, पुष्प समान गृहस्थ, रस समान आहारादिक और भ्रमर समान साधु मुनिराज होते हैं वे गृहस्थ के यहां से मर्यादा युक्त आहार पानी आदि लाकर अपनी उपजीविका करते हैं जिस में गृहस्थ को किसी प्रकार से पीडा नहीं करते हैं ॥ २ ॥ इस ही प्रकार बाह्य व आभ्यतर परिग्रह से रहित ज्ञानादि साधन करने वाले, और जैसे पुष्प पर भ्रमर भ्रमण करने में रक्त है वैसे दिये हुवे भात पानी आदि की गवेषणा में रक्त, ऐसे श्रमण इस अढाइ द्वीप रूप लोक में होते हैं ॥ ३ ॥ अब कोई कहे कि साधु दिये हुवे भात पानी की गवेषणा में आसक्त होवे तो कोइ भक्ति वश से आधाकर्मादि दोष युक्त आहार देवे उस ग्रहण करे तो हिंसा होवे और दोषित आहार नहीं ग्रहण करे तो शरीर का रक्षण

अहागडेसु रीयते, पुप्फेसु भमरो जहा ॥ ४ ॥ महुकार समाबुद्धा, जे भवति अणिस्सिया ॥ नाणापिंडरया दंता, तेणं वुच्चति साहुणो ॥ ५ ॥ त्तिबेमि ॥ इति दुमपुप्फिया नाम पढम अज्झयण सम्मत्त ॥ १ ॥ * * * *

होवे नहीं इस शंका का समाधान करते हैं कि हम ऐसी वृत्ति से आहार आदि प्राप्त करते हैं कि जिस से कोइ भी जीव की घात होवे नहीं सो वृत्ति कहते हैं—जैसे भ्रमर पुष्पों पर परिभ्रमण करता है, वैसे ही साधु भी गृहस्थने अपने लिये बनाया हुवा आहार के लिये ईर्या समिति सहित जाते हैं ॥४॥ अब शिष्य प्रश्न करता है कि साधु किस को कहना? उत्तर—भ्रमर समान वृत्ति वाले, तत्व के ज्ञाता, कुलादिक का प्रतिबंध रहित, विविध घरों के पिण्ड में रक्त और दमितेन्द्रिय जो होते हैं वे ही साधु कहाते हैं ॥ ५ ॥ ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसे भगवान महावीर स्वामी से मैंने सुना है वैसे ही तेरे से मैं कहता हूं यह द्रुम पुष्प के दृष्टांत का प्रथम अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १ ॥

\+ ×

सया मणो ॥ १ ॥ जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ॥ नय पुप्फं किलामेइ, सोयपाणेइ अप्पयं ॥ २ ॥ एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ॥ विहंगमाव पुप्फेसु दाण भत्तेसणेरया ॥ ३ ॥ वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मई ॥

यहां इस का ही मंगलाचरण किया है ॥ १ ॥ ऐसे धर्म के आराधक साधु होते हैं, वे किस प्रकार के आहारादिक से अपनी उपजीविका करते हैं सो भ्रमरके दृष्टान्त से बताते हैं—जैसे भ्रमर वृक्ष के पुष्प में रहे हुवे रसबिन्दुओं का मर्यादा से पान करता है इस तरह पान करते हुवे वह भ्रमर पुष्प को किसी तरह किलामना नहीं करता है और वह अपना आत्मा को तृप्त करलेता है इस दृष्टांत को सिद्ध करते हैं—वृक्ष समान ग्रामादिक, पुष्प समान गृहस्थ, रस समान आहारादिक और भ्रमर समान साधु मुनिराज होते हैं वे गृहस्थ के यहां से मर्यादा युक्त आहार पानी आदि लाकर अपनी उपजीविका करते हैं जिस में गृहस्थ को किसी प्रकार से पीड़ा नहीं करते हैं ॥ २ ॥ इस ही प्रकार बाह्य व आभ्यंतर परिग्रह से रहित ज्ञानादि साधन करने वाले, और जैसे पुष्प पर भ्रमर भ्रमण करनमें रक्त है वैसे दिये हुवे भात पानी आदि की गवेषणा में रक्त, ऐसे श्रमण इस अढाइ द्वीप रूप लोक में होते हैं ॥ ३ ॥ अब कोई कहे कि साधु दिये हुवे भात पानी की गवेषणा में आसक्त होवे तो कोइ भक्ति वश से आधाकर्मादि दोष युक्त आहार देवे उस ग्रहण करे तो हिंसा होवे और दोषित आहार नहीं ग्रहण करे तो शरीर का रक्षण

अहागडेसु रीयते, पुप्फेसु भमरो जहा ॥ ४ ॥ महुकार समाबुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया ॥ नाणापिंडरया दंता, तेण बुच्चति साहुणो ॥ ५ ॥ त्तिबेमि ॥ इति दुमपुप्फिया नाम पढम अज्झयण सम्मत्त ॥ १ ॥ * * * *

होवे नहीं इस शंका का समाधान करते हैं कि हम एसी वृत्ति से आहार आदि प्राप्त करते हैं कि जिस से कोइ भी जीव की घात होवे नहीं सो वृत्ति कहते हैं—जैसे भ्रमर पुष्पों पर परिभ्रमण करता है, वैसे ही साधु भी गृहस्थन अपने लिये बनाया हुवा आहार के लिये ईर्या समिति सहित जाते हैं ॥४॥ अब शिष्य प्रश्न करता है कि साधु किस को कहना? उत्तर—भ्रमर समान वृत्ति वाले, तत्व के ज्ञाता, कुलादिक का प्रतिबंध रहित, विविध घरों के पिण्ड में रक्त और दमितेन्द्रिय जो होवे हैं वे ही साधु कहाते हैं ॥ ५ ॥ ऐसा सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसे भगवान महावीर स्वामी से मैंने सुना है वैसे ही तेरे से मैं कहता हूं यह द्रुम पुष्प के दृष्टांत का प्रथम अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ १ ॥ + ×

॥ श्रामण्य पूर्वक द्वितीयं अध्ययनम् ॥

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ॥ पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसंगओ ॥१॥ वत्थ गंध मलंकारं, इत्थीओ सयणाणिय ॥ अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चइ ॥ २ ॥ जे य कंते पिए भोए, लद्धेवि पिट्ठि कुव्वइ ॥ साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥ ३ ॥ (काव्य) समाइ पेहाए परिव्वयंतो सियामणो निस्सरई

प्रथम अध्ययन में धर्म की प्रशंसा करी, ऐसा धर्म जिन शासन में है ऐसे धर्म पर श्रद्धा रखकर जिनोंने चारित्र अंगीकार किया है ऐसे साधुओं को संयम मार्ग में धैर्य रखना इस लिये धैर्य रखने का दूसरा अध्ययन कहते हैं जो काम भोगों को त्याग नहीं करता है वह साधुपना कैसे पाले ! क्यों कि काम भोग का अभिलाषी पद २ पर खेदित होता हुआ संकल्प विकल्प को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ चीन देश प्रमुख के वस्त्रादिक, कृष्णागर कस्तुरी अंबर प्रमुख सुगंधी पदार्थ मुकटादिक आभरण स्त्रियादिक, पर्यंकादिक शयनासन वगैरह पदार्थ अपने पास न होने से परवश बने हुए जो नहीं भोगते हैं परंतु वांछा करते हैं वे त्यागी नहीं कहाते हैं ॥ २ ॥ जो कांत व इष्टकारी शब्दादि विषय को प्राप्त होने पर भी अनेक प्रकार की शुभ भावना से स्वाधीन काम भोगों का त्याग करते हैं वे ही त्यागी कहाते हैं ॥ ३ ॥ विषय स्मरणादिक से साधु का मन चलित होने का प्रसंग आवे तो उस समय क्या करना सो सूत्रकार बताते हैं—समदृष्टि से विचरता हुआ अर्थात् गुरु के उपदेश से संयम मार्ग में प्रवर्तता और

वाहिद्धा॥नसा मह नो नि अहपि तीसे, इच्चेव ताओ विणइज्ज राग ॥४॥ आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमि। खु दुक्ख ॥ छिन्दाहि दोस विणएज्ज राग, एवं सुही हाहिसि सपराए ॥ ॥ ५ ॥ (गाथा) पक्खंदे जलियजोइ, धूमकेउ दुरासय ॥

द्रव्यादिक परिग्रह का त्याग करनेवाला साधु का मन पूर्व मुक्त विषय के स्मरण से अथवा जो विषय नहीं भोगवे हैं वैसे भोग भोगने की इच्छा से संयम रूप गृह से बाहिर निकले तो वह ऐसा चिंतवन करे कि वे विषय भोग के पदार्थ मेरे नहीं हैं और मैं भी उन का नहीं हू यों विचार करके उन विषयों पर से रागद्वेष का त्याग करे ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त विचार से यदि मनो निग्रह होवे नहीं तो शीत तापादि की आतापना लेकर, उपलक्षण से ऊनोदरी आदि तप कर, सुकुमारपना का त्याग कर कामभोगों की वांछा का उल्लंघन करे, क्यों की काम भोगों का उल्लंघन करने से दुःख का स्वयमेव उल्लंघन होजाता है इस लिये द्वेष, और राग का त्याग कर, शुद्ध संयम पालने से परंपरा से तू सुखी होगा ॥ ५ ॥ इन पांच गाथाओं में समुच्चय उपदेश कहा मन को विक्षेप स्थिर करने के लिये राजेमती और रहनेमी का दृष्टान्त करते हैं—सौराष्ट्र देश में बारह योजन की लम्बी व नव योजन की चौडी द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे उन के पिता वसुदेव के बडे भ्राता समुद्र विजय की शिवा देवी की कुक्षि से नेमनाथ भगवान का जन्म हुआ उन का सगपन उग्रसेन राजा की पुत्री राजेमती के साथ हुआ था श्रावण शुदी षष्टि को नेमनाथ भगवान उग्रसेन राजा के यहां यदी

नेच्छंति वंतयं भोत्तुं कुले जाया अगंधणे ॥ ६ ॥ धिरत्थु ते ऽ जसोकामी, जो त

धूमधाम से लग्न के लिये पधारे उग्रसेन राजाने नेमनाथ भगवान के लग्न में आये हुवे यादवादि लोगों के भोजनार्थ कितनेक पशुओं को पिंजरों में बंध कर रखे थे उनको देखकर नेमनाथ भगवान चिंतवन करने लगे कि-एक स्त्री की साथ लग्न करने में हजारों जीवों की घात होगी, इस से लग्न करना उचित नहीं यों विचार कर पिंजरों में से सब पशुओं को छुडवाकर आप वहां से ही पीछे फिरगये और एक वर्ष पर्यंत वर्षीदान देकर एक हजार पुरुष साथ दीक्षा अंगीकार की तत्पश्चात् राजेमतीने भी वैराग्य प्राप्त करके सातसो सखियों सहित दीक्षा अंगीकार की गिरनार पर्वत पर नेमनाथ भगवान के दर्शनार्थ जाते मार्ग में मेघवृष्टि होने से उन के सब वस्त्र पानी से भीग गये इस से गुफा में जाकर वस्त्रों निकाल कर सुकाये वहां नेमीनाथ भगवान के छोटे भाइ रहनेमी कायोत्सर्ग में खडे थे वे राजेमतीको नग्न देखकर कामाभिलाषी हुए और राजेमती को कहने लगे कि अहो सुंदरी ! चलो अपन संसार के सुख भोगवे, पीछे से अपन दीक्षा अंगीकार करेंगे रहनेमी का ऐसा वचन सुनकर राजेमती उन को छट्ठी गाथा से उपदेश करती है कि-अहो मुने! अगंधन नामक कुल में जन्मा हुवा सर्प नहीं सहन होवे वैसी जाज्वल्यमान बहुत धूम्र वाली अग्नि के कुंड में प्रवेश करता है परंतु वमन किये हुवे विषको पुनः भोगवने की इच्छा नहीं करता है इस दृष्टांत से आपको भी जानना चाहिये कि पशु भी ज्ञान बिना मात्र अभिमान से मरने को तत्पर होता है परंतु वमन किया हुवा कदापि ग्रहण नहीं करता है; तो जिन वचन के ज्ञाता बनकर विषय भोग को अतमें दुःखदायक जानता हुवा मैं कैसे ग्रहण करूं ! ॥६॥ तुमारे जैसे यादव कुलोत्पन्न मुनि वमन किये भोगों को भोगवना चाहते हैं, इस लिये

जीविथकारणा ॥ वत इच्छासि आवेउ, सेयं ते मरण भवे ॥ ७ ॥ अहंच भोगरा-
यस्स, तच सि अधगवण्हिणो ॥ मा कुले गंधणा होमो, सजम निहुओ चर ॥ ८ ॥
जइत काहिसि भाव जा जा दिच्छासि नारीओ॥ वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठियप्पा भवि-
स्ससि ॥ ९ ॥ तीसे सो वयण सोच्चा, संजयाइ सुभासिय ॥ अकुसेण जहा

अहो अपयश के अभिलाषी रथनेमि ! तुम को धिक्कार हो ! क्यों कि असयम रूप जीवितव्य के लिये वमन किये हुए भोगको फीर ग्रहनकरेन की इच्छा करतेहो ऐसे जीवितव्यसे तुम्हें मरना ही श्रेष्ठ है॥७॥अहो मुने! मैं भोजराजा के पुत्र उग्रसेनकी पुत्री हू और तुम अंधकविष्णु के पोत्रे-समुद्र विजयके पुत्र हो ऐसे उत्तम कुल में जन्मे हुए अपन दोनोंको वमन किये हुवे को भोगनेवाले गंधन जातिके सर्प जैसे होना योग्य नहीं है परंतु मन को स्थिर करके सब दुःख का नाश करनेवाला सयम का आचरण करें॥ ८ ॥ और भी राजमती उपदेश करती है कि अहो रथनेमि! जिन २ स्त्रियों को तुम देखोगे उन में यदि यह अच्छी रूपवाली है मैं इसकी साथ काम भोग सेवन करूं ऐसा भाव धारण करोगे तो वायुसे इधरउधर भटकते हुए जल पर रहने-वाले हड नामक तृण समान अस्थिर आत्मावाले बनोगे अर्थात् सकल दुःख का नाशक संयम में प्रमाद रूप पवनसे हलायेहुए हड नामक तृण समान इस संसारमें अनंत काल पर्यंत परिभ्रमण करोगे॥९॥जैसे मदो न्मत्त बना हुआ हाथी अकुशसे स्वस्थानमें स्थिर होजाता है वैसे ही उस साध्वी राजिमती का वैराग्य जनक

नेष्छतिवतय मोत्तुं कुले जाया अगधणे ॥ ६ ॥ धिरत्थु ते ऽ जसोकामी, जो त

धूमधाम से लग्न के लिये पधारे उग्रसेन राजाने नेमनाथ भगवान के लग्न में आये हुवे यादवादि लोगों के भोजनार्थ कितनेक पशुओं को पिंजरों में बंध कर रखे थे उनको देखकर नेमनाथ भगवान चिंतवन करने लगे कि-एक स्त्री की साथ लग्न करने में हजारों जीवों की घात होगी, इस से लग्न करना उचित नहीं यों विचार कर पिंजरों में से सब पशुओं को छुडवाकर आप यहां से ही पीछे फिरगये और एक वर्ष पर्यंत वर्षीदान देकर एक हजार पुरुष साथ दीक्षा अंगीकार की तत्पश्चात् राजेमतीने भी वैराग्य प्राप्त करके सातसो सखियों सहित दीक्षा अंगीकार की गिरनार पर्वत पर नेमनाथ भगवान के दर्शनार्थ जाते मार्ग में मेघवृष्टि होने से उन के सब वस्त्र पानी से भीग गये इस से गुफा में जाकर वस्त्रों निकाल कर सुकाये यहां नेमीनाथ भगवान के छोटे भाइ रहनेमी कायोत्सर्ग में खडे थे वे राजेमतीको नग्न देखकर कामाभिलाषी हुए और राजेमती को कहने लगे कि अहो सुंदरी ! चलो अपन संसार के सुख भोगवे, पीछे से अपन दीक्षा अंगीकार करेंगे रहनेमी का ऐसा वचन सुनकर राजेमती उन का छुट्टी माया से उपदेश करती है कि-अहो मुने! अगंधन नामक कुल में जन्मा हुवा सर्प नहीं सहन होवे वैसी जाज्वल्यमान बहुत धूम्र वाली अग्नि के कुंड में प्रवेश करता है परंतु वमन किये हुवे विषको पुनः भोगवने की इच्छा नहीं करता है इस दृष्टांत से आपको भी जानना चाहिये कि पशु भी ज्ञान बिना मात्र अभिमान से मरने को तत्पर होता है परंतु वमन किया हुवा कदापि ग्रहण नहीं करता है; तो जिन वचन के ज्ञाता बनकर विषय भोग को अतमें दु:खदायक जानता हुवा मैं कैसे ग्रहण करूं ॥६॥ तुमारे जैसे यादव कुलोत्पन्न मुनि वमन किये भोगों को भोगवना चाहते हैं, इस लिये

जीवियकारणा ॥ वंत इच्छसि आवेउ, सेयं ते मरणं भवे ॥ ७ ॥ अहंच भोगरा-
यस्स, तंच सि अंधगवण्हिणो ॥ मा कुले गंधणा होमो, संजम निहुओ चर ॥ ८ ॥
जइत काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारीओ॥ वायाविद्धुव्व हढो, अट्ठियप्पा भवि
स्ससि ॥ ९ ॥ तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं ॥ अंकुसेण जहा

अहो अपयश क अभिलाषी रथनमि ! तुम को धिक्कार हो ! क्यों कि असयम रूप जीवितव्य के लिये वमन किये हुए भोगको फीर ग्रहनकरेन की इच्छा करतेहो ऐसे जीवितव्यसे तुम्हें मरना ही श्रेष्ट है॥७॥अहो मुने! मैं भोजगराजा के पुत्र उग्रसेनकी पुत्री हू और तुम अंधकविष्णु के पोत्रे-समुद्र विजयके पुत्र हो ऐसे उत्तम कुल में जन्मे हुए अपन दोनोंको वमन किये हुवे को भोगनेवाले गंधन जातिके सर्प जैसे होना योग्य नहीं है परंतु मन को स्थिर करके सब दुःख का नाश करनेवाला संयम का आचरण करें॥ ८ ॥ और भी राजमती उपदेश करती है कि अहो रथनेमि! जिन २ स्त्रियों को तुम देखोगे उन में यदि यह अच्छी रूपवाली है मैं इसकी साथ काम भोग सेवन करूं ऐसा भाव धारण करोगे तो वायुसे इधरउधर भटकते हुए जल पर रहने-वाले हट नामक तृण समान अस्थिर आत्मावाले बनोगे अर्थात् सकल दुःख का नाशक संयम में प्रमाद रूप पवनसे डोलायेहुए हट नामक तृण समान इस संसारमें अनंत काल पर्यंत परिभ्रमण करोगे॥९॥जैसे मदो न्मत्त बना हुवा हाथी अंकुशसे स्वस्थानमें स्थिर होजाता है वैसे ही उस साध्वी राजिमती का वैराग्य जनक

नागो धम्मे सण्ठियाइओ ॥ १० ॥ एवं करंति संबुद्धा पण्डिया पवियक्खणा ॥ विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसुत्तमे ॥ ११ ॥ त्तिबेमि ॥ इति सामण्णपुव्वि अज्झयण बीइयं सम्मत्त ॥ २ ॥ * * * * * *

वचन सुनकर वह रथनेमी धर्म में स्थिर बना यहां विषयाभिलाषा से मदमस्त बना रह नेमीरूप हस्ति राजेमति रूप माहूत के जिन वचन रूप अंकुश के प्रहार से संयम रूप स्थान में स्थिर हुवा जानना ॥ १० ॥ जैसे वे पुरुषोत्तम रथनेमी भोगों से निवृत्त हो संयम में स्थिर बने वैसेही बुद्धिमान पंडित और प्रविचक्षण पुरुष संयम का आचरण कर उस में स्थिर रहते हैं ॥ ११ ॥ यह दूसरा श्रामण्य पूर्वक अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ २ ॥

॥ क्षुल्लकाचार नामक तृतियं अध्ययनम् ॥

सजमे सुट्ठि अप्पाण, त्रिप्पमुक्काण ताइण ॥ तेसिमेय मणाइण्ण, निग्गथाण महसिण

॥१॥ उद्देसिय, कीयगड । नियाग अभिहडाणिय ॥ राइमत्ते, सिणाणेय, गध, मल्ले,

द्वीतीय अध्ययन में आचार मे धृति रखने का कहा यह उस के ज्ञान विना नहीं हो सकता है इस लिये आचार का ज्ञान होना चाहिये आचार दो प्रकार के हैं १ प्रधानाचार और २ क्षुल्लकाचार इस में इस तीसरे अध्ययन में क्षुल्लकाचार का कथन करते हैं—सत्तरह प्रकार के संयम में अच्छी तरह आत्मा को स्थापन करने वाले बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से रहित, और छ जीवकाय के रक्षक ऐसे निर्ग्रंथ महाऋषि के निम्नोक्त प्रकार से ५२ आनाचीर्ण कहूंगा ॥ १ ॥ अब उन ५२ अनाचीर्ण के नाम कहते हैं—१ उद्देशिक—साधु के लिये आहारा आदि बनाकर देवे सो २ कृतगड—साधु के लिये मोल लेकर देवेसो, ३ नित्यपिण्ड—सदैव एक ही घर से आहारादि लेवे सो, ४ अभ्याहृत-साधु को उपाश्रय आदि में आहारादि सन्मुख ला कर देवे उसे ग्रहण करेसो ५ रात्रि भक्त—रात्रि में भोजन करेसो, ६ स्नान हस्तपादादि प्रक्षाल नोसो देश स्नान और सर्व शरीर प्रक्षालना सो सर्व स्नान ऐसे दोनों प्रकार के स्नान कर सो, ७गंध माल्य-सो चंदन वगैरह गंध और ८पुष्प की माला प्रमुख पहिनेसो९ वीजन पंखेआदि से पवन

नागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥ १० ॥ एव करंति सबुद्धा पण्डिया पवियक्खणा ॥ विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसुत्तमे ॥ ११ ॥ त्तिबेमि ॥ इति सामण्णपुव्वि मज्झयणं बीइयं सम्मत्तं ॥ २ ॥ * * * * * *

वचन सुनकर वह रथनेमी धर्म में स्थिर बना यहां विषयाभिलाषा से मदमस्त बना रथ नेमीरूप हस्ति राजेमति रूप मावत के जिन वचन रूप अंकुश के प्रहार से संयम रूप स्थान में स्थिर हुवा जानना ॥ १० ॥ जैसे वे पुरुषोत्तम रथनेमी भोगों से निवृत्त हो संयम में स्थिर बने वैसेही बुद्धिमान पंडित और प्रविचक्षण पुरुष संयम का आचरण कर उस में स्थिर रहते हैं ॥ ११ ॥ यह दूसरा श्रामण्य पूर्वक अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ २ ॥

वत्तिया ॥ नचानिवुड भोइत्त, आउरस्सरणाणि य ॥ ६ ॥ मूलए सिंगवेरेय, उच्छुखण्डे अनिव्वुडे ॥ कंदे मूलेय सचित्ते फले बीएय आमए ॥ ७ ॥ सोवच्चले सिंधवे लोण, रोमालोणय आमए ॥ सामुद्दे पंसु खारेय, काला लोणेय आमए ॥८॥ धुवणेत्ति वमणेय, वत्थीकम्मविरेयणे ॥ अंजणे दंतवणेय, गायाभंग विभूसणे ॥ ९ ॥ सव्वमेय मणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिण ॥ संजमम्मिय जुत्ताण,

गृहस्थ की वैय्यावृत्य करे अथवा गृहस्थ से वैय्यावृत्य करावे सो ५९ ज्ञाति संबंध मीलाकर आजीविका करे सो ३० जिस भाजन में पानी गरम किया जाता है वह भाजन ऊपर नीचे व बीचमें यों तीनों स्थान गरम हुए विना उस पानी को गरम जानकर लेना और उस का पान करना सा [वैसा पानी थका वाला होता है] ३१ क्षुधा रोग से पीडित कुटुम्ब का स्मरण करना तथा उन का आश्रय लेना सो ॥ ६ ॥ ३२ मूला ३३ अदरख, ३४ इक्षुखण्ड, ३५ सूरणादि कंद ३६ मूल जडी ३७ सचित्त फल ३८ सचित्त बीज ॥ ७ ॥ ३९ संचल, ४० सेंधव ४१ लवण, ४२ रोमदेशका लवण, ४३ समुद्र लवण, ४४ पांशुखार, ४५ काला लवण, ये सचित्त वस्तु ग्रहण करना सो ॥ ८ ॥ ४६ धूप देना ४७ जानकर वमन करना, ४८ वस्तिकर्म गुह्यस्थान की शोभा करना; ४७ विरेचन विना कारन जुलाब लेना, ५० अंजन शरीर की शोभा के लिये काजल सूरमादि लगाना, ५१ दातन करना और५२ शरीर की शोभा विभूषा करना ॥ ९ ॥ संयम में युक्त व भाव से कषाय कर और द्रव्य से उपकरण कर लघु भूत हलके ऐसे निर्ग्रंथ महर्षियों के पूर्वोक्त ५२ अनाचार कहे हुए हैं उन को

य वियणे ॥२॥ सन्निही गिहमत्तेय, रायपिण्डे किमिच्छए ॥ सबाहण दत पहोयणाय, सपुच्छणा, देह पलोयणाय ॥ ३ ॥ अट्ठावएयनालीय, छत्तस्स धारणट्ठाए ॥ तेगिच्छ पाहणा पाए, समारमच जोइणो ॥ ४ ॥ सिज्जायर पिण्डच, आसदि पलियंकए ॥ गिहतर निसेज्जा य गाय सुवट्टणाणिय ॥ ५ ॥ गिहिणो वेयावडिय जाइ आजीव

रखे सो ॥ २ ॥ १० स्निग्ध घृत गुडादिक रात्रि को रखेसो ११ गृहीपात्र-गृहस्थ के भाजन में भोजनादि करे सो, १२ राज्यपिण्ड—चक्रवर्ती आदि के लिये बना हुवा बलिष्ठ आहार ग्रहण करे सो १३ किमिच्छिक—दान शालादिक का हुवा आहार ग्रहण करे सो, १४ संबाधन-हड्डी मांस, त्वचा व रोमको सुख होवे वैसे तैलादिक का मर्दन बिना कारन करेसो, १५ दत प्रधावन-अंगुली आदीसे दांत मंजन करे सो, १६ संप्रश्न—गृहस्थ आदि असंयति को कुशल क्षेम पुछना सो, १७ कांच (आरिसा) पानी आदि में अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखना सो ॥ ३ ॥ १८ अष्टापद—द्यूत (जूवा) खेलना सो, १९ नालिका सतरंजादि अन्य खेल खेलना सो, २० शिरपर छत्र बिना कारन धारन करना २१ चिकित्सा करवाना २२ पांव में पगरखी आदि परिनना २३ अग्निका समारंभ करनासो ॥ ४ ॥ २४ शैय्यांतर पिंड जिस की आज्ञा से मकान में रहे होवे उनके घरका आहार पानी ग्रहण करेसो, २५ आसंदी-पर्यंक खाचा प्रमुख पर बैठना सो, २६ गृहांतरशैय्या—रोग तपश्चर्या या वृद्धावस्था से अशक्त बना हुवा साधु सिवाय अन्य का गृहस्थ के घर बैठे सो, २७ शरीर को पीठि आदि से मर्दन करेसो, ॥ ५ ॥ ४८ ॥

मेण तवेणय ॥ सिद्धिमग्ग मणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे ॥ १५ ॥ त्तिबेमि
सुड्डियायार नाम तच्चिय अज्झयण सम्मत्त ॥ ३ ॥ * * * *

मनुष्य भव को प्राप्त हो छो काय जीवों की रक्षा युक्त संयम तप का पालन कर पूर्व संचित कर्मों का क्षय कर शीतली भूत बन, यों अनुक्रमसे वे महर्षि मोक्ष मार्ग में प्रवतते निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥१५॥ इति लघु आचार नामका तीसरा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ३ ॥ * *

उहुमूय विहारिण॥ १०॥पचासव परिन्नाया, तिगुत्ता छसु संजया ॥ पचनिग्गहणाधीरा, निग्गया उज्जुदंसिणो॥ ११॥आयावयंति गिम्हेसु हेमंतेसु अवाउडा, वासासु पडिसंलीणा, संजयासुसमाहिया ॥ १२॥ परिसहरिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया ॥ सव्व दुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥ १३ ॥ दुक्कराइं करेत्ताणं, दुस्सहाइं सहेत्तु य ॥ केइत्थ देवलोगेसु केइ सिज्झंति नीरया ॥ १४ ॥ खवित्ता पुव्व कम्माइं, संज-

ये संपूर्ण वर्जनीय हैं ॥ १० ॥ इन ५२ अनाचीर्ण का सेवन नहीं करनेवाले हिंसादि पांचों आश्रव के त्यागी मनादि तीनों गुप्ति से गुप्त पृथिव्यादि षट्काया के रक्षक, पांचों इन्द्रियों का निग्रह करनेवाले बाइस परिषह प्राप्त होने पर धैर्य धारन करनेवाले, माया रूपरूप ग्रन्थि रहित, और संयम को देखने वाले होते हैं ॥ ११ ॥ ऐसे निग्रन्थ ग्रीष्म ऋतु में आतापना लेते हैं हेमन्त ऋतु शीतकाल में वस्त्र रहित बनकर ठण्ड सहन करते हैं और वर्षाकाल में अंगोपांग का संवर कर बैठते हैं एसे संयम पालने वाले ज्ञानादिक में यत्नावंत होते हैं ॥ १२ ॥ परिषह रूप शत्रुओं को दमन करने वाले मोह दूर करने वाले, और शब्दादिक इन्द्रियों के विषय को जितने वाले महर्षियों सब दुःखोंका नाश करने के लिये संयम तप में पराक्रम करते हैं ॥ १३ ॥ पूर्वोक्त प्रकार आचरण करने वाले साधुओं ५२ अनाचीर्ण के त्याग रूप दुष्करक्रिया करके और नहीं सहन होसके वैसे आतापनादिक सहन कर के कितनेक देवलोक में जाते हैं और कितनेक कर्मरूप रज रहित बनकर सिद्ध गति में जाते हैं ॥ १४ ॥ जो साधु देवलोक में जाते हैं वे भी वहां से चवकर

अज्झयण धम्मपण्णत्ती ? ॥ २ ॥ इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता ॥ सेयमे अहिज्जिउ अज्झयण धम्म पण्णत्ती तजहा—पुढवि काइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउ काइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया, ॥ ३ ॥ पुढवि चित्तमत मक्खाया अणेग

आत्मा का कल्याण होता है क्यों की इस में धर्म की प्ररूपणा की है इन षट्काया के नाम कहते हैं—१ पृथ्वीकाया, २ अप्काया, ३ तेउकाया, ४ वायु काया, ५ वनस्पति काया और ६ त्रसकाया *॥ ३ ॥ भगवानने पृथ्वीकाया सचित्त कही है इस में अनेक जीवों की अलग २ सत्ता है अर्थात् एक राइ के दाने जितनी पृथ्वीकाया में अलग २ शरीर के धारन करने वाले असंख्यात जीव रहते हैं;

* सब जीवों का आधार भूत होने से पृथ्वीकाय पहिली कही, इस का अंग कठिन होता है, २ पृथ्वी के आधार से पानी होने से दूसरा अप्काया का कथन किया इस का अंग पतला होता है, ३ पानी का प्रति पक्षी अग्नि है इसलिये तीसरा अग्नि काया का कथन किया, इस का अंग उष्ण होता है, ४ अग्नि की वृद्धि कर्ता वायु होने से चौथा वायुकाया का कथन किया इस का अंग अस्थिर होता है, ५ चारों से अधिक जीवों का पिण्ड रूप होने से पांचवा वनस्पति काया का कथन किया इस का अंग विस्तार पाता है, ६ उक्त पांचों जिस के उपयोग में आवे वैसा त्रसकाया का छट्ठा कथन किया है, इस का अंग दुःख से त्रासित होता दिखता है

॥ षड्जीवनिकाय नामक चतुर्थ अध्ययनम् ॥

सुयमे आउस! तेण भगवया एवमक्खाय इह खलु छज्जीवणिया नाम ज्झयण समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता ॥ सेयमे अहिज्झिउ अज्झयण धम्म पण्णत्ती ॥ १ ॥ कयरा खलुसा छज्जीवणिया नामज्झयण समणेण भगवया महावीरण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता ॥ सेयमे अहिज्झिउ

तीसर क्षुल्लकाचार अध्ययन में साधु को धृति रखने का कहा यह धृति आचार में रखना; ऐसा आचार षट् काया के जीवों की रक्षा करने वाले पालसकते हैं इसलिये इस अध्ययन में षट्काया का कथन करते हैं श्री सुधमा स्वामी अपने पाटवीय शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है उन जगत्प्रसिद्ध वर्धमान स्वामिने इस प्रकार कहा है काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने षट् जीवनिकाय नामक अध्ययन कहा, सुरासुर मनुष्य युक्त समवसरण में अच्छी तरह प्रकाशा और अच्छी तरह प्ररूपा है इस का अध्ययन करनेस मेरे आत्मा का कल्याण होता है क्यों की इस अध्ययन में धर्म का प्ररूपणा की है प्रश्न—श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने यह षट् जीवनिकाय नामक अध्ययन कैसे कहा कि जिस का अध्ययन करने से आत्मा का कल्याण होता है क्यों कि इस में धर्म की प्ररूपणा की है? उत्तर—यह निम्नोक्त प्रकार से षट्जीव निकाय नामक अध्ययन श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहा है इस का अध्ययन करने से

अज्झयण धम्मपण्णत्ती ? ॥ २ ॥ इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता ॥ सेयमे अहिज्जिउ अज्झयण धम्म पण्णत्ती तजहा—पुढवि काइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउ काइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया, ॥ ३ ॥ पुढवि चित्तमत मक्खाया अणेग

आत्मा का कल्याण होता है क्यों की इस में धर्म की प्ररूपणा की है इन षट्काया के नाम कहते हैं—१ पृथ्वीकाया, २ अप्काया, ३ तेउकाया, ४ वायु काया, ५ वनस्पति काया और ६ त्रसकाया *॥ ३ ॥ भगवानने पृथ्वीकाया सचित्त कही है इस में अनेक जीवों की अलग २ सत्ता है अर्थात् एक राइ के दाने जितनी पृथ्वीकाया में अलग २ शरीर के धारन करने वाले असंख्यात जीव रहते हैं;

* सब जीवों का आधार भूत होने से पृथ्वीकाय पहिली कही इस का अंग कठिन होता है, २ पृथ्वी के आधार से पानी होने से दूसरा अप्काया का कथन किया इस का अंग पतला होता है, ३ पानी का प्रति पक्षी अग्नि है इसलिये तीसरा अग्नि काया का कथन किया, इस का अंग उष्ण होता है, ४ अग्नि की वृद्धि कर्ता वायु होने से चौथा वायुकाया का कथन किया इस का अंग अस्थिर होता है ५ चारों से अधिक जीवों का पिण्ड रूप होने से पाचवा वनस्पति काया का कथन किया इस का अंग विस्तार वाला है, ६ उक्त पांचों जिस के उपयोग में आवे ऐसा त्रसकाया का छट्ठा कथन किया है, इस का अंग दुःख स त्रासित होता दिखता है

॥ षड्जीवनिकाय नामक चतुर्थ अध्ययनम् ॥

सुयं मे आउसं! तेण भगवया एवमक्खायं इह खलु छज्जीवणिया नाम ज्झयण समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता ॥ सेयमे अहिज्जिउ अज्झयण धम्म पण्णत्ती ॥ १ ॥ कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयण समणेण भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुयक्खाया सुपण्णत्ता ॥ सेयमे अहिज्जिउ

तीसरे क्षुल्लकाचार अध्ययन में साधु को धृति रखने का कहा यह धृति आचार में रखना, ऐसा आचार षट् काया के जीवों की रक्षा करने वाले पालसकते हैं इसलिये इस अध्ययन में षट्काया का कथन करते हैं श्री सुधर्मा स्वामी अपने पाटवीय शिष्य श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि अहो आयुष्मन् जम्बू! मैंने सुना है उन जगत्प्रसिद्ध वर्धमान स्वामीने इस प्रकार कहा है काश्यप गोत्रीय श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने षट् जीवनिकाय नामक अध्ययन कहा, सुरासुर मनुष्य युक्त समवसरण में अच्छी तरह प्रकाशा और अच्छी तरह प्ररूपा है इस का अध्ययन करने से मेरे आत्मा का कल्याण होता है क्यों की इस अध्ययन में धर्म का निरूपण की है प्रश्न—श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने यह षट् जीवनिकाय नामक अध्ययन कैसे कहा कि जिस का अध्ययन करने से आत्मा का कल्याण होता है क्यों कि इस में धर्म की प्ररूपणा की है! उत्तर—यह निम्नोक्त प्रकार से षट्जीव निकाय नामक अध्ययन श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामीने कहा है इस का अध्ययन करने से

मूलवीया, पोरवीया, खधवीया, वीयरुहा, समुच्छिमा तण-लया वणस्सइ काइया, सवीया चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ८ ॥ सेजे पुणे इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तंजहा—अडया, पोयया, जराउया रसया ससेइमा, समुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया॥ जेसिं केसिंचि पाणाण अभिक्कत, पडिक्कत, संकुचिय, पसारिय, रुय, भत, तसिय, पलाइय, आगइ गइ—विन्नाया ॥

रुयात जीव, और कद मूलादिक में अनंत जीव कहे हैं विशेष में वनस्पति के भेद कहते हैं १ अग्रबीज सो को रंटादिक, २ मूल बीज सो उत्पल कंदादि, ३ गांठ में बीजवाले सो पोरबीज इक्षुआदि, ४ स्कंध बीज सो डाली में बीजवाले बड़ादिक, ५ बीज रूप, गोधूमादिक ६ समूर्च्छिम तृण वगैरह वनस्पति कायिक हैं, वे सब सचित्त हैं उस में अलग २ अनेक जीव कहे हैं वे अग्नि आदि प्रतिकूल संयोगों से घात को प्राप्त होवे हैं ॥ ८ ॥ जो अनेक प्रकार के त्रस प्राणी हैं उन का वर्णन करते हैं—उन के उत्पन्न होन के मुख्यता से आठ स्थानक हैं—१ अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी आदि, २ थेली में उत्पन्न होनेवाले हस्ती आदि, ३ जड से उत्पन्न होनेवाले गौ आदि ४ रस में उत्पन्न होनेवाले कीटकादि, ५सस्वेद-पसीने में उत्पन्न होनेवाले यूकादि ६संमूर्च्छिम उत्पन्न होनेवाले मक्षिकादि ७भूमि फोडकर उत्पन्न होने वाले पतंग वगैरह, और८औपपातिक नरक देवता इन के लक्षण बताते हैं जिस किसी प्राणियों का सन्मुख

जीवा पुढो सत्ता, अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ४ ॥ आउ चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढो सत्ता, अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ५ ॥ तेउ चित्तमत मक्खाया, अणेग—जीवा पुढो-सत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ६ ॥ वाउचित्तमत मक्खाया, अणेग जीवा पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ७ ॥ वणस्सइ चित्तमत मक्खाया, अणेग जीवा पुढो सत्ता ,अन्नत्थ सत्थ परिणएण तंजहा—अग्गबीया,

वे जीवों मन्य अग्नि आदि प्रतिकुल संयोग से मृत्यु को प्राप्त होते हैं भगवानने अप्काया को भी सचित्त कही है इस में भी अनेक जीवों की पृथक २ सत्ता है अर्थात् एक पानी के बिन्दु में असंख्यात जीवों अलग २ शरीर वाले रहते हैं वे अग्नि आदि प्रतिकुल संयोगों से घात को प्राप्त होते हैं. भगवानने तेउकाया को सचित्त कही है उस में अनेक जीवों की अलग २ सत्ता है अर्थात् अग्नि के एक तणगिया में अलग २ असंख्यात जीव कहे हैं वे पानी आदि प्रतिकूल संयोगों से घात को प्राप्त होते हैं भगवानने वायु काया को सचित्त कही है उस में अनेक जीवों की अलग २ सत्ता है अर्थात् वायु काया के एक झापटे में असंख्यात जीवों हैं वे वायु आदि प्रतिकूल संयोगों से घात को प्राप्त होते हैं भगवानने वनस्पति काया को सचित्त कही है उस में अनेक जीवों की अलग२ सत्ता है अर्थात् धान्यादिक में एकेक जीव, फलादिक में संख्यात जीव,पत्रादिक में अस-

मूलबीया, पोरबीया, खधबीया, बीयरुहा, समुच्छिमा तण लया वणस्सइ काइया, सबीया चित्तमत मक्खाया अणेग जीवा पुढो सत्ता, अन्नत्थ सत्थ परिणएण ॥ ८ ॥ सेजे पुणे इम अणेगे बहवे तसा पाणा तजहा—अडया, पोयया, जराउया रसया ससेइमा, समुच्छिमा, उब्भिया, उववाइया॥ जेसिं केसिंचि पाणाण अभिक्कत, पडिक्कत, संकुचिय, पसारिय, रुय, भत, तसिय, पलाइय, आगइ गइ—विन्नाया ॥

ख्यात जीव, और कद मूलादिक में अनंत जीव कहे हैं विशेष में वनस्पति के भेद कहते हैं १ अग्रबीज सो को रंटादिक, २ मूल बीज सो उत्पल कंदादि, ३ गांठ में बीजवाले सो पोरबीज इक्षुआदि, ४ स्कंध बीज सो डाली में बीजवाले बडादिक, ५ बीज रूप, गोधूमादिक ६ समूर्च्छिम तृण वगैरह वनस्पति कायिक हैं वे सब सचित्त हैं उस में अलग २ अनेक जीव कहे हैं वे अग्नि आदि प्रतिकूल संयोगों से घात को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ८ ॥ जो अनेक प्रकार के त्रस प्राणी हैं उन का वर्णन करते हैं—उन के उत्पन्न होन के मुख्यता से आठ स्थानक हैं—१ अण्डे से उत्पन्न होनेवाले पक्षी आदि, २ थेली में उत्पन्न होनेवाले हस्ती आदि, ३ जड से उत्पन्न होनेवाले गौ आदि ४ रस में उत्पन्न होनेवाले कीटकादि, ५ सस्वेद-पसीने में उत्पन्न होनेवाले यूकादि ६ संमूर्च्छिम उत्पन्न होनेवाले मक्षिकादि ७ भूमि फोडकर उत्पन्न होनेवाले पतंग वगैरह, और ८ औपपातिक नरक देवता इन के लक्षण बताते हैं जिस किसी प्राणियों का सन्मुख

जेय कीड पयंगा, जाय कुंथु पिपीलिया, सव्वे बेइया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया सव्व पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया सव्वेदेवा सव्वेपाणा परमा हम्मिया॥ एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्तिपवुच्चइ ॥ १ ॥ इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाण—नेव सयं दंड समारम्भेज्जा, नेवन्नेहिं दंड समारंभेज्जा दंड समारभंतेवि अन्नेनसमणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं नकरेमि, नकारवेमि, करंतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स

आना, पीछा आना, संकोच करना विस्तृत होना, शब्दोच्चार करना भयभ्रांत होना, त्रास पाना, भग जाना, और गमनागमन करना होता है; जो कीडे, पतंगिये कुंथु, पीपिलिका आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय सब तिर्यंच सब नेरायिक, सब मनुष्य, और सब देव ये त्रस प्राणी हैं ये सब जीव सुख के अभिलाषी हैं यह पृथ्वीकाया से त्रस काया पर्यंत छ ही काया का स्वरूप कहा ॥ १ ॥ इन षट् जीवनिकाय का स्वयं आरंभ करे नहीं अन्य से आरंभ करावे नहीं और आरंभ करनेवाले को अच्छा जाने नहीं मन वचन व काया से जावज्जीव पर्यंत वैसा करे नहीं, अन्य से करावे नहीं और करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! इस पाप कर्म का मैं प्रतिक्रमण [पश्चाताप] करता हूं

भते ! पडिक्कमाभि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ १० ॥ पढमे भते ! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमण सव्व भते ! पाणाइवाय पच्चक्खामि से—सुहुमवा, बायरवा, तसवा, थावरवा, नेवसय पाणे अइवएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायावेज्जा, पाणे अइवायतवि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावजीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण नकरेभि नकारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्स भते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहाभि, अप्पाण वोसिरामि ॥ पढमे भते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ

उस की निंदा (आत्मा की साक्षी से) करता हूं, गर्हा (गुरु की साक्षी से) करता हूं और पापसे आत्मा को अलग करता हूं ॥ १० ॥ अब षट्काया की रक्षा के लिये पांच महाव्रत कहते हैं शिष्य प्रश्न करता है कि प्रथम महाव्रत किसे कहते हैं ? अहो शिष्य ! प्राणातिपात सो, जीवों को दुःख देने से निवर्तने का प्रथम महाव्रत है अब शिष्य कहता है कि अहो भगवन् ! सर्वथा प्रकार से प्राणातिपातका मैं प्रत्याख्यान करता हूं प्राणी चार प्रकार के हैं सूक्ष्म बादर त्रस और स्थावर इन प्राणियों का स्वयमेव अतिपात करे नहीं अन्य से करावे नहीं और अतिपात करने वाले को अच्छा जाने नहीं शिष्य बोला अहो भगवन् ! जाव जीव पर्यंत तीन करन तीन योग से मन वचन व काया से प्राणातिपात करूं नहीं, अन्य से कराऊं नहीं और करते को अच्छा जानूं नहीं अहो भगवन् ! इस पाप कर्म का

जेय कीड पयंगा, जाय कुंथु पिपीलिया, सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्व पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया सव्वेदेवा सव्वेपाणा परमा हाम्मिया॥ एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्तिपवुच्चइ ॥ ९ ॥ इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं—नेव सयं दंडं समारम्भेज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभेज्जा, दंडं समारंभतेवि अन्नेनसमणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं नकरेमि, नकारवेमि, करतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स

माना, पीछा माना, संकोच करना विस्तृत होना, शब्दोच्चार करना, भयभ्रांत होना, त्रास पाना, भग माना, और गमनागमन करना होता है, जो कीडे, पतंगिये, कुंथु, पीपिलिका आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय सब तिर्यंच सब नेरयिक, सब मनुष्य, और सब देव ये त्रस प्राणी हैं ये सब जीव सुख के अभिलाषी हैं यह पृथ्वीकाया से त्रस काया पर्यंत छ ही काया का स्वरूप कहा ॥ ९ ॥ इन छह जीवनिकाय का स्वयं आरंभ करे नहीं अन्य से आरंभ करावे नहीं और आरंभ करनेवाले को अच्छा माने नहीं मन वचन व काया से जावज्जीव पर्यंत वैसा करे नहीं, अन्य से करावे नहीं और करते को अच्छा माने नहीं अहो भगवन्! इस पाप कर्म का मैं प्रतिक्रमण [पश्चाताप] करता हूं

महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण ॥ १२ ॥ अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्ना दाणाओ वेरमण, सव्व भंते ! अदिन्नादाण पच्चक्खामि, से गामेवा नगरेवा, रन्नेवा, अप्पंवा बहुवा, अणुवा, थूलवा, चित्तमंतवा, अचित्तमंतवा नेवसय अदिन्न गेण्हेज्जा,नेवन्नेहिं अदिन्न गिण्हावेज्जा, अदिन्न गिण्हंतेवि अन्नेनसमणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए, तिविह तिविहेण, मणेण वायाए काएण, नकरेमि नकारवेमि करेंतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि,

करता हूं अहो भगवन् ! मृषावाद से विरमण रूप इस दूसरे महाव्रत में मैं उपस्थित हुवा हूं ॥ १२ ॥ अहो भगवन् ! तीसरा महाव्रत किसे कहते हैं ? अहो शिष्य ! तीसरा महाव्रत अदत्तादान से निवर्तने का है अहो भगवन् ! मैं सर्वथा प्रकार से अदत्तादान से निवर्तता हूं ग्राम नगर अथवा अरण्य में अल्प, बहुत, छोटा, बडा, सचित्त और अचित्त इन छ प्रकार के परिग्रह को किसि के दिये बिना स्वयं ग्रहण करे नहीं, अन्य से ग्रहण करावे नहीं और अन्य ग्रहण करनेवाले को अच्छा भी जाने नहीं शिष्य बोला अहो भगवन ! जावज्जीव तीन करन तीन योग से अर्थात् मन वचन व काया से मैं चोरी करूं नहीं, अन्य के पास कराऊं नहीं और करते को अच्छा जानु नहीं अहो भगवन् ! मैं उस

पाणाइवायाओ वेरमण ॥ ११ ॥ अहावरे दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमण, सव्व भंते! मुसावाय पच्चक्खामि, से कोहावा, लोहावा, भयावा हासावा, नेवसय मुस वएज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वयावेज्जा, मुस वयतेवि अन्नेन समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं, नकरेमि नकारवेमि करतपि अन्न न समणु जाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि॥ दोच्चे भंते!

मैं प्रतिक्रमण करता हूं, उस की निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे पापों से आत्मा को अलग करता हूं अहो भगवन्! सर्वथा प्रकार के प्राणातिपात से निवर्तने रूप प्रथम महाव्रत में मैं उपस्थित हुवा हूं॥११॥ अहो भगवन्! दूसरा महाव्रत किसे कहते हैं? अहो शिष्य! दूसरा महाव्रत मृषावाद से निवर्तने का है अहो भगवन्! मैं सर्वथा प्रकार से मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूं गुरु कहते हैं-क्रोध, लोभ, भय व हास्य से स्वयमेव मृषा बोले नहीं, अन्य से मृषा बोलावे नहीं और मृषा बोलनेवाले को अच्छा माने नहीं शिष्य बोला-अहो भगवन्! यावज्जीव पर्यंत तीन करन तीन योग से अर्थात् मन, वचन व काया से ऐसा करूं नहीं, अन्य से कराउं नहीं, और करते को अच्छा जानूं नहीं अहो भगवन्! ऐसे पाप का मैं प्रतिक्रमण करता हूं इस की निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे पाप से आत्मा को अलग

भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण ॥ १४ ॥ अहावरे पचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमण सव्व भंते ! परिग्गह पच्चक्खामि, से अप्पवा बहुअवा, अणुवा थूलवा, चित्तमतवा, अचित्तमतवा, नेवसय परिग्गह परिगिण्हज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा परिग्गह परिगिण्हतवि अन्ने न समणु जाणेज्जा जावज्जीवाए, तिविह तिविहेण, मणेण वायाए काएण, नकरेमि नकारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि, अप्पाण वोसिरामि ॥ पचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥ १५ ॥

करता हूं और इस से आत्मा को अलग करता हूं अहो भगवन् ! इस मैथुन से सर्वथा प्रकार से निर्वतन रूप चौथा महाव्रत में मैं उपस्थित हुवा हूं ॥ १४॥ अहो भगवन् ! पांचवा महाव्रत किसे कहते हैं ? अहो शिष्य ! पांचवा महाव्रत सर्वथा प्रकार के परिग्रह से निर्वतने का है शिष्य कहता है-अहो भगवन् ! मैं सर्वथा प्रकार से परिग्रहका प्रत्याख्यान करता हूं गुरु कहे-अल्प बहुत छोटा बडा सचित्त और अचित्त परिग्रह स्वय रखे नहीं, अन्य से रखावे नहीं और परिग्रह रखने वाले को अच्छा जाने नहीं शिष्य कहता है कि मैं जावजीव पर्यंत तीन करन तीन योग से अर्थात् मन, वचन व काया से परिग्रह रखूं नहीं, अन्य के पास परिग्रह रखाबू नहीं और परिग्रह रखते को अच्छा भी जानू नहीं अहो भगवन् ! इस का प्रति क्रमण, निंदा व गर्हा मैं करता हूं और ऐसे पापकारी कार्यों से आत्मा

अप्पाण वेसिरामि तच्च भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण ॥ १३ ॥ अहावरे चउत्थ भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमण सव्व भंते ! मेहुण पच्चक्खामि से दिव्ववा माणुसवा, तिरिक्खजोणियवा, नेवसय मेहुण सेवेज्जा नेवन्नेहिं मेहुण सेवाविज्जा, मेहुण सेवतेवि अन्नेन समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण नकरेमि नकारवेमि करतपि अन्न नसमणु जाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि, गरिहामि अप्पाण वोसिरामि॥ चउत्थे

का प्रतिक्रमण, निंदा व गर्हा करता हूं और इस पाप से आत्मा को अलग करता हूं अहो भगवन् ! पर अदत्तादान से विरमण रूप तीसरे महाव्रत में मैं उपस्थित हुआ हूं ॥ १३ ॥ अहो भगवन् ! चौथा महाव्रत किसे कहते हैं ? अहो शिष्य ! चौथा महाव्रत मैथुन से निवर्तने का है अहो भगवन् ! सर्वथा प्रकारसे मैं मैथुनका प्रत्याख्यान करता हूं गुरु कहे देवता, मनुष्य व तिर्यंच संबंधी मैथुनका सेवन करे नहीं, अन्य से करावे नहीं और सेवन करने वाले को अच्छा जाने नहीं शिष्य बोला अहो भगवन् ! जावज्जीव पर्यंत तीन करन तीन योग से अर्थात् मन वचन व काया से मैं मैथुन सेवूं नहीं अन्यसे सेवाऊं नहीं और सेवन करनेवाले को अच्छा जानूं नहीं अहो भगवन् ! इस का प्रतिक्रमण, निंदा व गर्हा

महव्वयाइ, राइभोयण वेरमण छट्ठाइ अत्तहियट्ठयाए उवसपज्जित्ताण विहरामि ॥ १७ ॥ से भिक्खुवा भिक्खूणीवा सजय विरय पडिहय पच्चक्खए पावकम्मे दियावा, राओवा, एगओवा, परिसा गओवा, सुत्तेवा, जागरमाणेवा से पुढविंवा, भित्तिंवा, सिलवा, लेलुवा, ससरक्ख वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेणवा, पाएणवा, कट्ठुणवा किलिंचेणवा, अगुलियाएवा, सिलागाएवा, सिलाग हत्थेणवा, नालिहेज्जा नविलिहेज्जा, नघट्टेज्जा, नभिंदेज्जा, अन्न न लिहावेज्जा न विलिहावेज्जा, न घट्टावेज्जा, न भिंदावेज्जा, अन्न आलिहंतवा, विलिहतवा, घट्टतवा, भिंदतवा,

महाव्रत और छट्ठा रात्रि भोजन का व्रत आत्महित के लिये अंगीकार कर विचरूंगा ॥ १७ ॥ संयमी, विरति और प्रत्याख्यान से पापकर्म का नाश करने वाले साधु अथवा साध्वी दिन में अथवा रात्रि में, अकेला अथवा बहुत मनुष्यों की परिषद में सोता हुवा अथवा जागता हुवा पृथ्वी, भित्ति, शिला, ककर, सचित्त पृथ्वीकाय, और सचित्त वस्त्र को हाथ से, पांव से, काष्ट से, काष्ट के खण्ड से, अंगुली से, लोहे की शलाका से, अथवा हस्त शलाका से लीखे नहीं, वारवार लीखे नहीं, संघटन करे नहीं, और भेदे नहीं, ऐसे ही अन्य के पास से भी लिखावे नहीं वारवार लिखावे नहीं, संघटन करावे नहीं, छेदन भेदन करावे नहीं और अन्य लिखते, वारंवार लिखते, संघटन करते व छेदन भेदन करते को अच्छा

अहावरे छट्ठे भंते! वए राईं भोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! राईं भोयणं पच्चक्खामि, से असणंवा पाणंवा, खाइमंवा, साइमंवा नवसयं राईं भुंजेज्जा, नवन्नेहिं राईं भुंजाविज्जा, राईं भुंजंतेवि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥ १९ ॥ इच्चेयाइं पंच

को अलग करता हूं अहो भगवन् ! इस परिग्रह से निवर्तने रूप पांचवे महाव्रत में मैं उपस्थित हुआ हूं ॥ १८ ॥ अहो भगवन् ! छठा व्रत किसे कहते हैं ? अहो शिष्य ! रात्रि भोजन से निवर्तने का छठा व्रत है अहो भगवन् ! मैं रात्रि भोजन का प्रत्याख्यान करता हूं. गुरु कौन-अशन, पान, खादिम व स्वादिम यो चारों आहार रात्रि में स्वयं भोगवे नहीं, अन्य से भोगवावे नहीं और भोगवते को अच्छा जाने नहीं शिष्य कहता है कि अहो भगवन् ! जावजीव तीन करन तीन योग से अर्थात् मन वचन व काया से रात्रि भोजन करूं नहीं अन्य से कराऊं नहीं और करने वाले को अच्छा जानूं नहीं अहो भगवन् ! इस पाप कर्म का मैं प्रतिक्रमण, निंदा व गर्हा करता हूं और इस से आत्मा को अलग करता हूं अहो भगवन्! मैं रात्रि भोजन से सर्वथा निवर्तने रूप छठा व्रत में मैं उपस्थित हुआ हूं ॥ १९ ॥ उक्त पांच

ज्जा, नवक्खोडेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्न ना मूसावेज्जा, न सफुसावेज्जा, न आवीलावेज्जा, न पवीलावेज्जा, न अक्खोडावेज्जा, न पक्खोडावेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्न आमुसतवा, सफुसतंवा, आवीलतवा, पवीलतवा, अक्खोडतंवा, पक्खोडतवा, आयावतवा, पायावतवा, न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्समते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि

नहीं एक वार झटके नहीं, वारवार झटके नहीं, एक वार सूर्य के आताप में सुकावे नहीं, वारंवार सूर्य के आताप में सुकावे नहीं ऐसे ही अन्य के पास से स्पर्श करावे नहीं, वारंवार स्पर्श करावे नहीं, ममलावे नहीं, वारंवार मसलावे नहीं, झटकावे नहीं, वारंवार झटकावे नहीं, आताप में रखावे नहीं, वारंवार आताप में रखावे नहीं ऐसे ही अन्य स्पर्श करते वारवार स्पर्श करते, मसलते, वारवार मसलते, झटकते वारंवार झटकते, आताप में रखते वारंवार आताप में रखते को अच्छा जाने नहीं यावज्जीव पर्यंत तीन करण तीन योग से मन वचन व काया से करे नहीं, करावे नहीं और अन्य करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! इस का मैं प्रतिक्रमण करता हूं निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे काय से

न समणु जाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण, न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्सभंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ १७ ॥ से भिक्खूवा भिक्खुणीवा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे, दियावा, राओवा, एगओवा, परिसा गओवा, सुत्तवा जागरमाणवा से उदगंवा ओसंवा, हिमंवा महियंवा, करगंवा हरतणुगंवा, सुद्धोदगंवा, उदउल्लंवाकाय, उदउल्लंवा वत्थं, ससिणिद्धंवा कायं, ससिणिद्धंवा वत्थं, न मुसेज्जा, न समुफुसेज्जा, न आवीलेज्जा, नपवीलेज्जा, नअक्खोडे

माने नहीं, मावजीव पर्यंत तीन करन तीन योग से मन वचन व काया से करे नहीं करावे नहीं और करते को अच्छा माने नहीं अहो भगवन् ! इस की मैं क्रमना, निंदा व गर्हा मैं करता हूं और इस पाप से आत्मा को वोसिराता हूं ॥ १७ ॥ संयमी विरती व प्रत्याख्यान से पाप कर्म की घात करने वाले साधु अथवा साध्वी दिन को अथवा रात्रि को, अकेला अथवा परिषद में सोता हुवा अथवा जागता हुवा कूवे का पानी ओस का पानी, बरफ का पानी धूंवर का पानी गड़े का पानी, हरे तृण पर रहा हुवा पानी, वर्षा का पानी, पानी से भीगी हुई काया, पानी से भीगा हुवा वस्त्र अथवा सचित्त पानी की फुसार से भीगी काया व भीगा वस्त्र को स्पर्श करे नहीं, वारंवार स्पर्श करे नहीं, एक वार मसले नहीं, वारंवार मसले

ज्जा, नअक्खोडेज्जा, नआयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्न ना मूसावेज्जा, न सफुसावेज्जा, न आवीलावेज्जा, न पवीलावेज्जा, न अक्खोडावेज्जा, न पक्खोडावेज्जा, न आयावेज्जा, न पयावेज्जा, अन्न आमुसतवा, सफुसंतवा, आवीलतवा, पवीलतवा, अक्खोडतवा, पक्खोडतवा, आयावतवा, पायावतवा, न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि तस्समते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि

नहीं एक बार झटके नहीं, वारवार झटके नहीं, एक बार सूर्य के आताप में सुकावे नहीं, वारवार सूर्य के आताप में सुकावे नहीं ऐसे ही अन्य के पास से स्पर्श कराने नहीं, वारंवार स्पर्श करावे नहीं, मसलावे नहीं, वारंवार मसलावे नहीं, झटकावे नहीं, वारंवार झटकावे नहीं, आताप में रखावे नहीं, वारंवार आताप में रखावे नहीं ऐसे ही अन्य स्पर्श करते वारवार स्पर्श करते, मसलते, वारंवार मसलते, झटकते वारवार झटकते, आताप में रखते वारवार आताप में रखते को अच्छा जाने नहीं यावज्जीव पर्यंत तीन करण तीन योग से मन वचन व काया से करे नहीं, करावे नहीं और अन्य करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! इस का मैं प्रतिक्रमण करता हूं निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे काय से

॥१८॥ से भिक्खूवा, भिक्खुणीवा, संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे दियावा, राओवा, एगओवा, परिसागओवा, सुत्ते वा, जागरमाणेवा, से अगणिंवा इंगालंवा, मुम्मुरंवा, अच्चिंवा, जालंवा, अलायंवा, सुद्धागणियंवा, उक्कंवा नउज्जेज्जा, नघट्टेज्जा, न भिंदिज्जा, न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं न उज्जावेज्जा, न घट्टावेज्जा, न भिंदावेज्जा, न उज्जालावेज्जा, न पज्जालावेज्जा, न निव्वावावेज्जा, अन्न उज्जंतंवा घट्टंतंवा भिंदंतंवा उज्जालंतवा पज्जालंतवा निव्वावंतवा न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि

आत्मा को अलग करता हूं ॥ १८ ॥ संयमी विरति व प्रत्याख्यान से पाप कर्म का नाश करनेवाले साधु अथवा साध्वी दिन या रात्रि में, एकांत में अथवा परिषद् में सोता हुवा या जागता हुवा अग्नि अंगारे, मुमुरे अग्नि के कण, ज्वाला, कुंभार के निभाडे की अग्नि, शुद्ध अग्नि, अथवा विद्युत की अग्निका उद्योत करे नहीं, संघट्टन करे नहीं जलावे-प्रजाले नहीं अथवा बुझावे नहीं ऐसे ही अन्य के पास उद्योत करावे नहीं संघट्टन करावे नहीं, जलावे प्रजाले नहीं वैसे ही बुझवावे नहीं ऐसे ही अन्य उद्योत करते संघट्टन करते उज्वालते प्रज्वालते व बुझाते को अच्छा माने नहीं यावज्जीव पर्यंत तीन करन तीन योग से मन वचन व कायासे करे नहीं, करावे नहीं व करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! उस का मैं प्रतिक्रमण करता हूं

गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ १९ ॥ से भिक्खूवा, भिक्कुणीवा, सजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्म, दियावा राओवा, एगआवा, परिसागओवा सुत्तेवा, जागरमाणेवा, से सिएणवा, विहुयणेणवा, तालियंटेणवा, पत्तेणवा, पत्तभंगेणवा, साहाएवा, साहाभंगेणवा, पिहुणेणवा, पिहुणहत्थेणवा, चेलेणवा, चेलकण्णेणवा, हत्थेणवा, मुहण्स्वा, अप्पाणावा काय, बाहिरवावि पोग्गलं, न फुमेज्जा न विएज्जा, अन्न न फुमावेज्जा न वीयावेज्जा, अन्नं फुमतंवा, वीयतवा न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए

उस की निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे पाप कर्म से आत्मा को अलग करता हूं ॥ १० ॥ संयमी विरति व प्रत्याख्यान से पाप कर्म का नाश करनेवाले साधु अथवा साध्वी दिन अथवा रात्रि को, अकेला अथवा परिषद् में रहा हुवा सोता हुवा अथवा जागता हुवा श्वेत चामर, वस्त्रादिकका बींजना तालवृन्त-ताड के पत्ते का बींजना पत्र, पत्र का टुकडा शाखा, शाखा का टुकडा मोरपींछ मोरपींछ की पूंजनी, वस्त्र, वस्त्र के किनारे, हाथ अथवा मुख से अपनी काया को अथवा बाहिर के पुद्गलों को फुंके नहीं अथवा बींजना डाले नहीं, अन्य से फूंकावे नहीं और पंखा करावे नहीं और जो फूंकता अथवा पंखा करता होवे उसे अच्छा जाने नहीं जावज्जीव तीन करन तीन योग से मन, वचन व काया

तिविह तिविहेण मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥ २० ॥ से भिक्खूवा, भिक्खुणीवा संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे, दियावा राओवा, एगओवा, परिसागओवा, सुत्तेवा जागरमाणेवा, से बीएसुवा, बीयपइट्ठेसुवा, रूढेसुवा, रूढपइट्ठेसुवा, जाएसुवा, जाएपइट्ठेसुवा हरिएसुवा, हरिअपइट्ठेसुवा, छिन्नेसुवा, छिन्नपइट्ठेसुवा, सच्चित्तेसुवा, सच्चित्तकोल

से करे नहीं करावे नहीं और करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! उस की मैं प्रतिक्रमना निंदा व गर्हा करता हूं और ऐसे पापकारी कार्य से अपना आत्मा को अलग करता हूं ॥ २ ॥ संयमी विरति व प्रत्याख्यान से पाप कर्म की घात करनेवाला साधु अथवा साध्वी दिन अथवा रात्रि को, एकांत में अथवा परिषद में सोता हुवा अथवा जगता हुवा बीज में, अथवा बीज पर रही हुइ वस्तु पर, अंकूर अथवा अंकूर पर रही हुइ वस्तु पर, गुच्छे अथवा गुच्छ पर रही हुइ वस्तु पर, हरिपर अथवा हरिपर रही हुइ वस्तु पर, छेदन की हुइ वनस्पति पर अथवा उन के पर रही हुइ वस्तु पर सचित्त पर अथवा सचित्त जंतु आदि की उत्पत्ति होमइ हावे वैसे काष्ट पर जावे नहीं, खडा रहे नहीं। बैठे नहीं

पडिनिसिमएसुवा, न गच्छेज्जा, न चिट्ठेज्जा, न निसिएज्जा, न तुयट्टेज्जा, अन्न न गच्छावेज्जा, न चिट्ठावेज्जा, न निसियावेज्जा, न तुयट्टावेज्जा, अन्नं गच्छतवा, चिट्ठतवा, निसियतवा, तुयट्टतवा न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ २१ ॥ से भिक्खूवा, भिक्खुणीवा, संजय विरय पडिहय पच्चक्खाए पावकम्मे, दियावा, राओवा, एगओवा, परिसागओवा, सुत्तेवा, जागरमाणेवा, से कीडंवा, पयंगवा, कुंथुवा,

व शयन करे नहीं वैसे ही उक्त स्थानपर अन्य को चलावे नहीं, खड़ा रखे नहीं बैठावे नहीं और शयन करावे नहीं और जो कोइ जाता, खड़ा रहता, बैठता अथवा शयन करता होवे उस अच्छा भी जाने नहीं जावज्जीव पर्यंत तीन करन तीन योग से—मन वचन व काया से करे नहीं, करावे नहीं और करते को अच्छा जाने नहीं अहो भगवन् ! एसे पाप कर्म से मैं प्रतिक्रमता हूं, निंदता हूं, गर्हता हूं और आत्मा को वोसिराता हूं ॥ २१ ॥ संयमी विरति व प्रत्याख्यान से पापकर्म का नाश करनेवाले साधु अथवा साध्वी दिन को अथवा रात्रि को एकांत में अथवा परिषद में सोता हुवा या जगता हुवा

पिपीलियया हत्थंसिवा, पायसिवा, वाहुंसिवा, उरुंसिवा, उदरसिवा, सीससिवा, वत्थंसिवा, पडिग्गहसिवा, कंबलसिवा, पायपुच्छणसिवा, रयहरणसिवा, गोच्छगसिवा, उडुगसिवा, दंडगंसिवा, पीढगसिवा, फलगंसिवा, सेज्जसिवा संथारगसिवा, अन्नयरंसिवा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय, पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्ज नोणं संघाय मावज्जेज्जा ॥२२॥ (गाहा) अजयं चर माणोअ पाणभूयाइं हिंसई ॥ बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥ १ ॥ अजयं

कीडा पतंग, कुंथु अथवा पिपीलिका [चींटि] हाथ पांव, बाहा उरु साथल उदर, मस्तक, वस्त्र पात्र कंबल, पादपुच्छन रजोहरन, गोच्छक भाषा के भाजन, दंड, बाजोठ पाटिये, शैय्या, संथारा व वैसे ही अन्य उपकरण होवे तो उस को यत्नापूर्वक देखकर प्रमार्जना कर जो जीव जन्तु निकले उने एकांत में ले जावे परंतु उन जीवों की घात करे नहीं ॥२२॥ यह षट्काया का रक्षण विस्तार पूर्वक कहा अब इस संबंध में साधु को गाथाएं कर उपदेश करते हैं-अयत्ना से अर्थात् ! प्रकाशित स्थान में आंखों से देखे बिना और अप्रकाशित स्थान में पूंजे बिना जो चलते हैं व द्वीन्द्रियादि प्राण (त्रस) और वनस्पत्यादिक भूत (स्थावर) की हिंसा करते हैं इस से उन को पापकर्म बंधते हैं जिस का उन को कटुक फल मीलता है ॥ १ ॥ अयत्ना से अर्थात् सूत्री आदि के अवलंबन से खडा रहने वाला प्राण भूत की हिंसा करता है, इस से वह

चिट्ठमाणोअ, पाणभूयाइ हिंसइ ॥ बधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥ २ ॥ अजय आसमाणोअ, पाणभूयाइ हिंसइ ॥ बधइ पावयं कम्म,त से होइ कडुय फल ॥ ३ ॥ अजयं सयमाणोअ, पाणभूयाइं हिंसइ ॥ बंधइ पावयं कम्म त से होइ कडुयं फल ॥ ४ ॥ अजय भुंजमाणोअ, पाणभूयाइं हिंसइ ॥ बधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥ ५ ॥ अजय भासमाणोओ, पाणभूयाइं हिंसइ ॥ बधइ पावय कम्मं, तं से होइ कडुयं फल ॥ ६ ॥ २२ ॥ कहचरे कहचिट्ठे, कहआसे

पापकम का बध करता है जिस का फल कडुवा होता है ॥ २ ॥ अयत्ना से अर्थात् विना पूंजे विना दखे जीव वाले स्थान पर बैठता हुवा प्राण भूत की हिंसा करता है जिस से वह पाप कर्म का बंधक होता है जिस का फल कडुवा होता है ॥ ३ ॥ अयत्ना से शयन करने वाला प्राण भूत की हिंसा करता है जिस से वह पाप कम का बंध करता है जिस का कडुवा फल होता है ॥ ४ ॥ अयत्ना से अर्थात् अप्रकाशित भाजन में व रस लुब्धता से भोजन करता हुवा प्राण भूत की हिंसा करता है वह पाप कर्म का बध करता है जिस का उस को कडुवा फल मीलता है ॥ ५ ॥ अयत्ना से खुले मुह से अथवा सावद्य वचन बोलता हुवा प्राण भूत की घात करता है जिस से वह पाप कम का बंध करता है इस का कडुवा फल होता है ॥ ६ ॥ २२ ॥ इस से शिष्य

कह सए ॥ कहभुजतो भासंतो पावकम्म नबधई ? ॥ ७ ॥ जयचरे जयचिट्ठे जयआसे जयंसए जय भुजतो भासंतो, पावकम्म नवधइ ॥ ८ ॥ सव्वभूयप्प भूयस्स सम्म भूयाइ पासओ ॥ पिहियासवन्तस्स, पावकम्म नवधइ ॥ ९ ॥ ॥ २४ ॥ पढमं नाण तओदया, एव चिट्ठइ सव्वसजए ॥ अन्नाणी किं काही,

प्रश्न करता है कि अहो भगवन् ! किस प्रकार चले, कैसे खडे रहे, कैसे बैठे कैसे शयन करे, किस तरह आहारादि भोगवे और किस तरह बोले कि जिस से पाप कर्म का बंधन नहीं होवे ? ॥ ७ ॥ अहो शिष्य ! ईर्या समिति युक्त यत्ना पूर्वक चले, यत्ना से खडे रहे, यत्ना से बैठे, यत्ना से शयन करे, यत्ना से एषणा समिति पूर्वक भोजन करे और यत्ना से भाषा समिति युक्त बोले कि जिस से पाप कर्म का बंध होवे नहीं ॥ ८ ॥ सब भूतों को आत्मा समान मानने वाले, प्राणी मात्र को वीतरागने कहा हुइ विधि से देखने वाले, पांचो आश्रवों का निकंदन करने वाले और पांचों इन्द्रियों का दमन करने वाले साधु का पाप कर्म का बंध नहीं होता है ॥ ९ ॥ २४ ॥ उपयुक्त गाथा के उपदेश से प्राणी मात्र की दया पालने से पापकर्म का बंध नहीं होता है, इस से सर्वथा प्रकार से प्रयत्न करके दया पालना चाहिये ज्ञान का अभ्यास करने की कोइ जरूर नहीं है ऐसे भ्रम को दूर करने के लिये कहते हैं कि-प्रथम ज्ञान तत्पश्चात् दया अर्थात् जीवा जीवादिक का ज्ञान होने से ही षट् जीवनिकाय

किंवा नाहीय छेय पावग ? ॥ १० ॥ सोचा जाणइ कल्लाण, सोचा जाणइ पावगं ॥ उभयपि जाणइ सोचा, ज सेयं तं समायरे ॥ ११ ॥ जो जीवेवि न याणइ, अजीवेवि नयाणइ ॥ जीवाजीवो अयाणता, कहसो नाही य सजम ॥ १२ ॥ जो जीवे वि वियाणइ, अजीवे वि वियाणइ ॥ जीवाजीवे वियाणतो, सोहु नाहीय सजमं ॥ १३ ॥ जया जीव मजीवेय, दोविएए वियाणइ ॥ तया गइ

की दया पाली जाती है इस तरह के ज्ञान पूर्वक दया पालने से साधु सर्वथा प्रकार से सयती होता है इस से विपरीत अज्ञानी क्या करेगा ? क्यों की अज्ञानी अंध समान है कैसा कार्य करना और कैसा नहीं करना यह अज्ञानी नहीं जान सकता है और पुण्य पाप को भी अज्ञानी कैसे जानेगा ? अर्थात् नहीं जानेगा ॥ १० ॥ अब इस का फल बताते हैं शास्त्र श्रवण करने से कल्याणकारी संयम जान सकता है और शास्त्र श्रवण करने से पाप कर्म भी जान सकता है शास्त्र श्रवण करने से दोनो जान सकते हैं इस से इस में जो कल्याणकारी है उस का आचरण करते हैं ॥ ११ ॥ जो जीव को भी नहीं जानते हैं और अजीव को भी नहीं जानते हैं वे जीवाजीव को नहीं जानते हुवे सयम को कैसे जानेंगे ? ॥ १२ ॥ जो जीव को भी जानते हैं और अजीव को भी जानते हैं वे जीवाजीव को जानते हुए संयम को भी जानेंगे ॥ १३ ॥ २८ ॥ अब जीवादिक का ज्ञान अनुक्रम से मुक्ति

बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥ १४ ॥ जया गई बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥ तयापुण्णंच पावंच, बंधमोक्खंच जाणइ ॥ १५ ॥ जया पुण्णंच पावंच, बंधमोक्खंच जाणई ॥ तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जेय माणुसे ॥ १६ ॥ जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जेय माणुसे ॥ तया चयइ सजोगं, सब्भितरं च बाहिर ॥१७॥ जया चयइ सजोगं, सब्भितरं च बाहिरं ॥ तया मुण्डे भवित्ताण, पव्वइए अणगारियं ॥१८॥ जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ॥ तया संवर मुक्कट्ठं, धम्मफासे अणुत्तर

वाला होता है सो कहते हैं जब जीव और अजीव यों दोनों को जानेगा, तब गमनागमन रूप चार गति व चौवीस दंडक रूप सब जीवों की गति को भी जानेगा ॥ १४ ॥ जब सब जीवों की बहुत प्रकार की गतागति जानेगा तब पुण्य पाप बंध व मोक्ष को भी जानेगा ॥ १५ ॥ जब पुण्य पाप बंध व मोक्ष को जानेगा तब गतागत करानेवाले देवता व मनुष्य संबंधि भोगों से निवर्तेगा ॥ १६ ॥ जब देवता व मनुष्य संबंधि भोगों से जो निवर्तेगा वह अभ्यंतर कषाय व बाह्य कुटुंबादिक का संयोग का त्याग करेगा ॥ १७ ॥ जब आभ्यंतर व बाह्य संयोग का जो त्याग करेगा तब द्रव्य भाव से मुण्डित बनकर अनगार पना अंगीकार करेगा ॥ १८ ॥ जब मुण्डित बनकर अनगारपना अंगीकार करेगा तब वह उत्कृष्ट संवर रूप अनुत्तर धर्म को स्पर्शेगा ॥ १९ ॥

॥ १९ ॥ जया संवर मुक्कट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ॥ २० ॥ जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं ॥ तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥ २१ ॥ जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥ तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली ॥ २२ ॥ जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥ तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ २३ ॥ जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥ २४ ॥ जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ

जब वह उत्कृष्ट संवर रूप अनुत्तर धर्म को स्पर्शेगा तब अबोधि मिथ्यात्व रूप कालुष्यता से कराया हुवा कर्म को दूर करेगा ॥ २० ॥ जब मिथ्यात्व से कराया हुवा कर्म दूर करेगा तब वह सर्व लोक व्यापी (केवल) ज्ञान दर्शन को प्राप्त करेगा ॥ २१ ॥ जब सर्व व्यापी ज्ञान दर्शन को प्राप्त करेगा तब वह रागद्वेष जीतने वाला जिन केवली बनकर लोकालोक का स्वरूप को जानेगा ॥ २२ ॥ जब जिन केवली बनकर लोकालोक का स्वरूप जानेगा तब योगों का निरुंधन कर शैलेशी पना [पर्वत समयोगों की स्थिरता] अंगीकार करेगा ॥ २३ ॥ जब योगों का निरुंधन कर शैलेशी पना अंगीकार करेगा तब कर्मों का घात करने से कर्म रज रहित बनकर सिद्ध गति को प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ कर्मों का क्षय करके रज रहित बनकर सिद्ध गति के

बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥ १४ ॥ जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥ तयापुण्णच पावच, बंधमोक्खच जाणइ ॥ १५ ॥ जया पुण्णंच पावच, बंधमोक्खच जाणई ॥ तया निव्विंदए भोए जे दिव्वे जेय माणुसे ॥ १६ ॥ जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जेय माणुसे ॥ तया चयइ सजोगं, सब्भितर च बाहिरं ॥१७॥ जया चयइ सजोग, सब्भितर च बाहिरं ॥ तया मुण्डे भवित्ताण, पव्वइए अणगारियं ॥१८॥ जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारिय ॥ तया संवर मुक्कट्ठ, धम्मफासे अणुत्तर

ताना होता है सो कहते हैं-जब जीव और अजीव यों दोनों को जानेगा, तब गमनागमन रूप चार गति व चोवीस दंडक रूप सब जीवों की गति को भी जानेगा ॥ १४ ॥ जब सब जीवों की बहुत प्रकार की गता गति जानेगा तब पुण्य पाप बंध व मोक्ष का भी जानेगा ॥ १५ ॥ जब पुण्य पाप बंध व मोक्ष को जानेगा तब गतागत करानेवाले देवता व मनुष्य संबंधि भोगों से निवर्तेगा ॥ १६ ॥ जब देवता व मनुष्य संबंधि भोगों से जो निवर्तेगा वह अभ्यंतर कषाय व बाह्य कुटुंबादिक का संयोग का त्याग करेगा ॥ १७ ॥ जब आभ्यंतर व बाह्य संयोग का जो त्याग करेगा तब द्रव्य भाव से मुण्डित बनकर अनगार पना अंगीकार करेगा ॥ १८ ॥ जब मुण्डित बनकर अनगारपना अंगीकार करेगा तब वह उत्कृष्ट संवर रूप अनुत्तर धर्म को स्पर्शेगा ॥ १९ ॥

इच्चेय छज्जीवणिय, सम्मद्दिट्ठी सयाजए ॥ दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहेज्जासि ॥ २९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति छज्जीवणियाज्झयण चउत्थ सम्मत्तं॥४॥*

पना प्राप्त करके यह पूर्वोक्त प्रकार की षड्जीवनिकाय की मन वचन व काया इन तीन योगों से विराधना करे नहीं ॥ २९ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा तुमसे कहा है ॥ यह षड्जीवनिकाय नामक चोथा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ४ ॥ * *

नीरओ॥तया टीगमरथपत्थो, सिद्धो भवइ सासओ॥ २५॥ २६॥ सुह सायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स ॥ उच्छोलणा पहोअस्स, दुल्लहा सोग्गइ तारिसगस्स ॥ २६ ॥ तवोगुणपहाणस्स, उज्जुमइ खंति सजम रयस्स ॥ परीसहे जिणतस्स, सुलहा सोग्गइ तारिसगस्स ॥ २७ ॥ २७ ॥ पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छति अमर भवणाइ ॥ जेसिं पिउ तवो सजमोय, खतिय बभचेरच ॥२८॥

मास होगा, तब लोक के उपर रहे हुवे शाश्वत सिद्ध होगा ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऐसी मोक्ष की प्राप्ति किस का होती है और किस का नहीं होवी है सो कहते हैं सुख-शब्दादि विषयोंका आस्वाद करनेवाला, साता के लिये आकुल व्याकुल, निष्काम शयन करने वाला और हाथ पांव का प्रक्षालन करने वाला ऐसे साधु को सुगति की प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥ २६ ॥ तप गुण में प्रधान, कपट रहित सरल, क्षमा संयम में रमण करनेवाला और परिषह जीतनेवाले को ऐसी सुगति [मोक्ष की प्राप्ति] सुगम है॥ २७॥ २७ ॥ अल्पकाल पर्यंत धर्म का सेवन करे वह भी देवलोक में जावे सो कहते हैं-जिन को बारह प्रकार का तप, सत्तरह प्रकार का संयम, क्षमा व ब्रह्मचर्य प्रिय हैं वे पीछे से भी अर्थात् पीछेकी अवस्था में भी दीक्षा अंगीकार कर निकले तो भी अमर भवन-देव लोक में जाते हैं॥२८॥सदैव यत्नावंत सम्यक् दृष्टि दुर्लभता से प्राप्त होवे ऐसा साधु

इच्चेय छज्जीवणिय, सम्मद्दिट्ठी सयाजए ॥ दुलहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहेज्जासि ॥ २९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति छज्जीवणियाज्झयणं चउत्थं सम्मत्तं॥४॥*

पना प्राप्त करके यह पूर्वोक्त प्रकार की पड्जीवनिकाय की मन वचन व काया इन तीन योगों से विराधना करे नहीं ॥ २९ ॥ श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है वैसा तुमसे कहा है ॥ यह पड्जीवनिकाय नामक चौथा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ४ ॥ * *

॥ पिण्डैषणा नामकं पञ्चम मध्ययनम् ॥

सपत्ते भिक्खकालम्मि, असभंतो अमुच्छिओ ॥ इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए ॥ १ ॥ से गामेवा नगरेवा, गोयरग्गगओ मुणी, ॥ चरे मद मणुव्विग्गो,

पूर्वोक्त चतुर्थ अध्ययन में षट्काया के जीवों की रक्षा मात्री साधु का आचार कहा ऐसा आचार शरीर से पाल सकते हैं शरीर का निर्वाह आहार से होता है आहार के दो भेद कहे हैं सावद्य और निरवद्य इस में से सावद्य आहार साधु को सदा वर्जनीय है और निर्वद्य आहार यथोक्त रीति से यथोक्त काल में लेना कल्पता है ऐसा आहार का ज्ञान साधु को होना चाहिये इस लिये इस अध्ययन में निर्वद्य आहार लेने की विधिबताते हैं पूर्वोक्त साधु संयम का निर्वाह के लिये भिक्षा काल प्राप्त होने पर आकुलता रहित आहार की लुब्धता रहित निम्नोक्त प्रकार के क्रम से भक्त पान की गवेषणा करे ॥ १ ॥ आहार की गवेषणा किस तरह और कहां करना सो कहते हैं—ग्राम नगरादि में

॥ सिद्धांत में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय द्वितीय प्रहर में ध्यान तृतीय प्रहर में भंडोपकरण की प्रतिलेखना कर नगर निर्धूम होवे पनघट पर पनहारियों कम आवे भिक्षुक फीरने लग जावे, वायसादि पक्षियों भक्ष्यार्थ आने लगे, इस लक्षण से भिक्षाकाल प्राप्त हुवा जान गोचरी के लिये निकले परंतु वर्तमान काल में गामठे का समय भिन्न भिन्न होने से जिन समय होवे उस समय जाना उचित है

अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥ २ ॥ पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिंचरे ॥ वज्जंतो बीय हरियाइं, पाणेय दगमट्टियं ॥ ३ ॥ ओवायं विसमं खाणुं विज्जलं परिवज्जए ॥ संकमेण न गच्छेज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥ ४ ॥ पवडंते व से तत्थ पक्खलंते व संजए ॥ हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे ॥ ५ ॥ तम्हा तेण न गच्छेज्जा, संजए सुसमाहिए ॥ सइअन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे ॥ ६ ॥ इंगालं छारिअं-

गोचरी जाने के लिये तैयार हुवा पूर्वोक्त गुण संपन्न साधु मर्याद रखकर शब्दादि विषयों में आकुलता रहित चित्त से धीरे २ उपयोग रखता चले ॥ २ ॥ अब मार्ग में देखकर चलने की विधि कहते हैं— आगे युग (४ हाथ) प्रमाण देखता हुवा और बीज, हरितकाय, प्राणियों, पानी व मृत्तिका को वर्जता हुवा पृथ्वीपर गमन करे ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त गुण संपन्न साधु दूसरा अच्छा मार्ग विद्यमान होने पर खड्डे विषमभूमि वृक्ष प्रमुख ठुंठे, और कीचड वाले मार्ग से तथा काष्ट पाषाणादि रखे होवे उन पर से जावे नहीं ॥ ४ ॥ ऐसे मार्ग से जाने से जो दोष होता है सो कहते हैं -यह संयति वहां गमन करता गर्तादिक में पड़ता हुवा अथवा स्खलना पाता हुवा अपने शरीर की तथा त्रस अथवा स्थावर प्राण भूत की हिंसा करे ॥ ॥ इस से सुसमाधिवंत संयति अन्य अच्छा मार्ग जाने के लिये होने पर पूर्वोक्त विराधनावाले मार्ग से जावे नहीं परंतु दूसरा मार्ग होवे नहीं तो ऐसे मार्ग से प्रभुव यत्ना पूर्वक जावे ॥ ६ ॥ गोचरी जाते मार्ग में पृथ्वीकाया की यत्ना कहते हैं पूर्वोक्त

रासिं तुसरासिंच गोमय । ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं नइक्कमे ॥ ७ ॥
न चरेज्ज वासे वासन्ते, महियाए पडंतिए ॥ महावाए व वायंते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा
॥ ८ ॥ न चरेज्ज वेससामन्ते, बंभचेरवसाणुए ॥ बंभयारिस्स दंतस्स, होज्जा तत्थ
विसुत्तिया ॥ ९ ॥ अणायणे चरंतस्स, संसग्गीए अभिक्खणं ॥ होज्ज वयाण पीला,

भस्म का संयति अंगार (कोयले) की राशि, क्षार राशि, तुष राशि, और गोमय (गोबर) राशि पर सचित्त रज से भरे हुवे पाँव से जावे नहीं ॥ ७ ॥ अब गोचरी आश्रित अपूकाया की रक्षा कहते हैं—वर्षा वर्षती होवे, धूंअर पडती होवे बहुत वायु चलता होवे, बहुत धूल उडती होवे बहुत मक्खी मच्छर पतंगिया वगैरह बहुत जीवों उडते होवे वैसे मार्ग में संयति गोचरी के लिये गमनागमन करे नहीं ॥ ८ ॥ यह प्रथम व्रत की यत्ना कही, अब चतुर्थ व्रत की यत्ना कहते हैं—ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली वेश्या के आसपास के प्रदेश में गमनागमन करे नहीं वहां जाने आने से जीतेन्द्रिय ब्रह्मचारी के चित्त से असमाधि होवे ॥ ९ ॥ अयोग्य स्थान वेश्यादिक के घरों के आसपास के स्थान में गोचरी आदि के लिये गमन करनेवाले साधु के व्रत में वारंवार उन के संसर्ग से दूषण लगे और साधुपना में भी शंका होवे भावार्थ यह है कि वैसे स्थान में वारंवार वेश्या को देखने से साधु को भोग की इच्छा होवे, अथवा वेश्या साधु को लोभावे, वारंवार साधु वहां आवे जावे जिस से शील में दूषण लगे और संयम से

सामण्णमिय संसओ ॥ १० ॥ तम्हा एय वियाणिचा, दोस दुग्गइवड्डण ॥ वज्जए वेससामतं, मुणी एगत मस्सिए ॥ ११ ॥ साण सूइयगाविं, दित्त गोण हय गय ॥ सडिब्भ कलह जुद्ध दूरओ परिवज्जए ॥ १२ ॥ अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले ॥ इंदियाइ जहा भाग, दमइत्ता मुणी चरे ॥ १३ ॥ दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणोय गोयरे ॥ हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावय सया ॥ १४ ॥ आलोयं

भ्रष्ट होवे, तथा लोको में अमवीते होवे ॥ १० ॥ इस लिये एकांत मोक्षार्थी साधु वेश्या रहती हो उस स्थान में गमनागमन करने के दोषों को दुर्गति बढानेवाले जानकर वेश्या के निवास में जाने का त्याग करे अर्थात् वैसे माग में जावे नहीं ॥ ११ ॥ और जिस स्थान कूत्ता, प्रसुत गाय, मदोन्मत्त बैल अश्व और गज बालकों का क्रीडा करने का स्थान, क्लेश और युद्ध स्थान का साधु दूर से ही त्याग करे ॥ १२ ॥ माग में गमन करता हुआ साधु द्रव्य से ऊर्ध्व मुख करके और भाव से अहंकार धारन करके तैसे ही द्रव्य से नीची गरदन करके और भाव से दीनपना धारन कर चले नहीं चलते स्त्री आदि पदार्थों देखकर श्रेष्ठ मनोज्ञ आहार आदि देखकर प्रेमानुराग धारन करे नहीं कदाचित् आहार आदि इच्छित वस्तु का संयोग न होवे तो क्रोध करे नहीं परंत पांचों इन्द्रियों के विकारों को दमन कर गमनागमन करे ॥ १३ ॥ ऊंच नीच कुल में गोचरी के लिये जाते हुए साधु जल्दी चले नहीं वैसे ही दूसरे साथ वार्तालाप करता

रासिं तुसरासिंच गोमय। ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं नइक्कमे ॥ ७ ॥ न चरेज वासे वासन्ते, महियाए पडंतिए ॥ महावाए व वायंते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा ॥ ८ ॥ न चरेज वेससामन्ते, बम्भचेरवसाणुए ॥ बम्भयारिस्स दंतस्स, होज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥ ९ ॥ अणायणे चरंतस्स, संसग्गीए अभिक्खणं ॥ होज्ज वयाणं पीला,

मकार का संयति अंगार (कोयल) की राशि, क्षार राशि, तुष राशि और गोमय (गोबर) राशि पर सचित्त रज से भरे हुवे पांव से जावे नहीं ॥ ७ ॥ अब गोचरी जाते अपुकाया की रक्षा करते हैं-वर्षा बरसती होवे, धूंअर पड़ती होवे, बहुत वायु चलता होवे, बहुत धूल उड़ती होवे बहुत मक्खी मच्छर पतंगिया वगैरह बहुत जीवों उड़ते होवे वैसे मार्ग में संयति गोचरी के लिये गमनागमन करे नहीं ॥ ८ ॥ यह प्रथम व्रत की यत्ना कही, अब चतुर्थ व्रत की यत्ना कहते हैं.—ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली वेश्या के आसपास के प्रदेश में गमनागमन करे नहीं वहां जाने आने से जीतेन्द्रिय ब्रह्मचारी के चित्त से असमाधि होवे ॥ ९ ॥ अयोग्य स्थान वेश्यादिक के घरों के आसपास के स्थान में गोचरी आदि के लिये गमन करनेवाले साधु के व्रत में वारंवार उन के संसर्ग से दूषण लगे और साधुपना में भी शंका होवे भावार्थ यह है कि वैसे स्थान में वारंवार वेश्या को देखने से साधु को भोग की इच्छा होवे, अथवा वेश्या साधु को लोभावे, वारंवार साधु वहां आवे जावे जिस से शील में दूषण लगे और संयम से

सामण्णमिय संसओ ॥ १० ॥ तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ॥ वज्जए वेससामंतं मुणी एगते मस्सिए ॥ ११ ॥ साण सूइयगाविं, दित्त गोण हय गय ॥ सडिब्भ कलह जुद्ध दूरओ परिवज्जए ॥ १२ ॥ अणुन्नए नावणए, अप्पहिट्ठे अणाउले ॥ इंदियाइं जहा भाग, दमइत्ता मुणी चरे ॥ १३ ॥ दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणोय गोयरे ॥ हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावय सया ॥ १४ ॥ आलोयं

भ्रष्ट होवे, तथा लोकों में अप्रतीति होवे ॥१०॥ इस लिये एकांत मोक्षार्थी साधु वेश्या रहती हो उस स्थान में गमनागमन करने के दोषों को दुर्गति बढानेवाले जानकर वेश्या के निवास में जाने का त्याग करे अर्थात् वैसे मार्ग में जावे नहीं ॥ ११ ॥ और जिस स्थान कुत्ता, प्रसुत गाय, मदोन्मत्त बैल अश्व और गज बालकों का क्रीडा करने का स्थान, क्लेश और युद्ध स्थान का साधु दूर से ही त्याग करे ॥ १२ ॥ मार्ग में गमन करता हुवा साधु द्रव्य से ऊर्ध्व मुख करके, और भाव से अहंकार धारन करके वैसे ही द्रव्य से नीची गरदन करके और भाव से दीनपना धारन कर चले नहीं चलते स्त्री आदि पदार्थों देखकर श्रेष्ठ मनोज्ञ आहार आदि देखकर प्रेमानुराग धारन करे नहीं कथंचित् आहार आदि इच्छित वस्तु का संयोग न होवे तो क्रोध करे नहीं परंत पांचों इन्द्रियों के विकारों को दमन कर गम नागमन करे ॥ १३ ॥ ऊंच नीच कुल में गोचरी के लिये जाते हुए साधु जल्दी चले नहीं वैसे ही दूसरे साथ वार्तालाप करता

रासिं तुसरासिंच गोमय । ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ त नइक्कमे ॥ ७ ॥
न चरेज्ज वासे वासन्ते, महियाए पडंतिए ॥ महावाए व वायते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा
॥ ८ ॥ नचरेज्ज वेससामन्ते, बम्भचेरवसाणुए ॥ बम्भयारिस्स दंतस्स, होज्जा तत्थ
विसुत्तिया ॥ ९ ॥ अणायणे चरन्तस्स, ससग्गीए अभिक्खणं ॥ होज्ज वयाण पीला,

मच्चार का सयाति अंगार (कोयला) की राशि, क्षार राशि, तुष राशि, और गोमय (गोबर) राशि पर सचित्त रज से भरे हुये पांव से जावे नहीं ॥ ७ ॥ अब गोचरी जाते अपूकाया की रक्षा कहते हैं-वर्षा वर्षती होवे, धूंअर पडती होवे, बहुत वायु चलता होवे बहुत धूल उडती होवे बहुत मक्खी मच्छर पतंगिया वगैरह बहुत जीवों उडते होवे वैसे मार्ग में संयति गोचरी के लिये गमनागमन करे नहीं ॥ ८ ॥ यह प्रथम व्रत की यत्ना कही, अब चतुर्थ व्रत की यत्ना कहते हैं.—ब्रह्मचर्य का नाश करनेवाली वेश्या के आसपास के प्रदेश में गमनागमन करे नहीं वहां जाने आने से जीतेन्द्रिय ब्रह्मचारी के चित्त से असमाधि होवे ॥ ९ ॥ अयोग्य स्थान वेश्यादिक के घरों के आसपास के स्थान में गोचरी आदि के लिये गमन करनेवाले साधु के व्रत में वारंवार उन के संसर्ग से दूषण लगे और साधुपना में भी शंका होवे भावार्थ यह है कि वैसे स्थान में वारंवार वेश्या को देखने से साधु को भोग की इच्छा होवे, अथवा वेश्या साधु को बोलावे, वारंवार साधु वहां जावे आवे जिस से शील में दूषण लगे और संयम से

पगुरे ॥ कवाड नो पणुल्लिज्जा उग्गहासि अजाइया ॥ १८ ॥ गोयरग्ग पविट्ठोय, वच्च मुत्तं न धारए ॥ ओगास फासुय नच्चा, अनुन्नविय वोसिरे ॥ १९ ॥ नीय दुवारं तमस, कोट्ठग परिवज्जए ॥ अचक्खु विसओजत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥ २० ॥ जत्थ पुप्फाइ बीयाइ, विप्पइण्णाइ कोट्ठए ॥ अहुणोवलित्त उल्लं, दट्ठूण परिवज्जए ॥ २१ ॥ एलग दारग साण, वच्छग वावि कोट्ठए ॥ उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताणव सजए ॥ २२ ॥ असंसत्त पलोइज्जा, नाइ दूरावलोअए ।

तो उसे गृहस्थ की आज्ञा से खोल कर बाहिर निकले ॥ १८ ॥ गोचरी के लिये निकला हुवा साधु को मलुनीत बडी नीत की बाधा होवे तो जीव रहित खुल्ली भूमिका में उस जमीन के स्वामीकी आज्ञा लेकर अथवा शक्रेन्द्रकी आज्ञा लेकर उसे वोसरावे अर्थात् बाधा से निवर्ते ॥ १९ ॥ जिस घरका बहुत नीचा द्वार हो जहां अन्धकार होवे, अथवा कोठादि ऐसे स्थान में साधु गौचरी करे नहीं क्योंकी वहां चक्षु से नहीं दीखने से प्राणियों दृष्टि गत नहीं होते हैं और उस से उन की विराधना होने का संभव है ॥ २० ॥ जिस स्थान मार्ग में पुष्प बीज वगैरह बीखरे हुए होवे अथवा जो तुरत का लींपा हुवा होवे तो उसे देखकर वहां से तत्काल फीर जाय परंतु वहां प्रवेश करे नहीं ॥ २१ ॥ जिस के द्वार में बकरा बालक कुत्ता अथवा बच्छडा होवे तो उन को उल्लंघकर अथवा उन को वहां से दूर निकाल कर घर में प्रवेश करे नहीं ॥ २२ ॥ गृहस्थ के यहां भिक्षा के लिये गया हुवा साधु मेपो-मेप दृष्टि से देखे नहीं,

थिग्गल दारं सार्धदगभवणाणिय ॥ चरतो नर्श्निज्झाए, सकठाण विवज्जए, ॥ १५ ॥ रन्नो गिहवईणं च रहस्सारक्खियाणय ॥ संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥ १६ ॥ पडिकुट्ठकुलं न पविसे, मामगं परिवज्जए ॥ अचियत्त कुलं न पविसे, चियत्त पविसे कुलं ॥ १७ ॥ साणी पावार पिहिय, अप्पणा नाव

हुवा, व हसता हुवा चले नहीं ॥ १४ ॥ गोचरी गया हुवा साधु गृहस्थ के घर के गवाक्ष चोरोंने खात दिया होवे वैसा स्थान घरों की संधि और पानी रखने के स्थान वगैरह देखे नहीं और वरे शंकाशील इस स्थान देखने का त्याग करे ॥ १८ ॥ और भी राजा, श्रेष्टि आदि गृहपति और कोटपालका रहस्य स्थान कि जो क्लेश करनेवाला होता है उस को दूर से ही वर्जकर गमना गमनकरे ॥ १९ ॥ अब गोचरी जाने का स्थान कहते हैं—प्रतिकुष्ट नीच जाति आदि निषिद्ध कुल में गोचरी के लिये प्रवेश करे नहीं मेरे घर में आवो मत वैसा निषेध करने वाले के घर में भी प्रवेश करे नहीं अप्रतीति होवे उसे कुल में प्रवेश करे नहीं, परन्तु प्रतीति होवे उसे कुल में प्रवेश करे ॥ २० ॥ गृहस्थ के घर भिक्षा के लिये गया हुवा साधु उस के द्वार पर बांस की टट्टी अथवा टाट आदि का पड़दा पड़ा होवे तो उस की आज्ञा लिये विना उसे खोले नहीं गृहस्थ के घर के कपाट भी खोल कर प्रवेश करे नहीं क्यों की वे वहां गुप्तकर्म वगैरह करते होवे तो अप्रतीत उपजे परन्तु अंदर गये पाछे यदि द्वार लग गये होवे

इच्छिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥ २७ ॥ आहरंति सिया तत्थ परिसाडिज्ज भोयण ॥
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २८ ॥ सम्मद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि
हरियाणिय ॥ असंजमकारिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥ २९ ॥ साहट्टु निक्खिवित्ताणं,
सचित्तं घट्टियाणिय ॥ तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥ ३० ॥ आगहइत्ता
चलइत्ता, आहारे पाणभोयण ॥ दिंतियं पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिसं ॥ ३१ ॥

ग्रहण करे परंतु अकल्पनीय वस्तु ग्रहण करे नहीं ॥ २७ ॥ कदाचित वह भोजन देने वाला दातार साधु को नीचे डालता हुआ लाकर देवे तो साधु उस दातार को कहे कि इस तरह से लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ २८ ॥ प्राण बीज व हरिकाय का समर्दन करता हुआ साधु को आहार देने के लिये आवे तो उसे असंयम करने वाला जानकर उस का परित्याग करे ॥२९॥ सचित्त वस्तु में अचित्त वस्तु मीलाकर सचित्त वस्तु पर अचित्त वस्तु रखकर, अथवा सचित्त वस्तु से संघट्टन कर के वैसे ही साधु के लिये पानी हिलाकर जो कोई आहार आदि देवे तो साधु उस का त्याग करे अर्थात् वैसा आहारादि ग्रहण करे नहीं ॥३०॥ घर में वर्षादि से सचित्त पानी भराहो उसे अवगाह कर अथवा हरिकाय प्रमुख को दूर कर के पानी व भोजन लावे तो उस लानेवाले को साधु कहे कि इस तरह लाया हुवा मुझे नहीं कल्पता है. ॥ ३१ ॥

उप्फुल न विनिज्झाए, नियट्टेज्ज अयंपिरो ॥ २३ ॥ अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्ग गओमुणी ॥ कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियंभूमिं परिक्कमे ॥ २४ ॥ तत्थेव पडिलेहेज्जा, भूमिभाग वियक्खणो ॥ सिणाणस्सय वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥ २५ ॥ दग-मट्टिअ आयाण, बीयाणि हरियाणिय ॥ परिवज्जतो चिट्ठेज्जा, सव्विंदिय समाहिए ॥ २६ ॥ तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहारे पाणभोयण ॥ अकप्पियं न

गृहस्थ के घर में दूर रहे हुए स्थान को दीर्घ दृष्टि से देखे नहीं आहारादि जो ग्रहण करनेकी वस्तु है उसे देखे इस सिवाय अन्य वस्तुओं को ऊंचा नीचा होकर देखे नहीं और आहारादि इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं हुए होवे तो गृहस्थ की निंदा करे नहीं ऐसे दीनपना भी करे नहीं ॥ २३ ॥ गोचरी को गया हुवा साधु गृहस्थ के घर में चौके की जो मर्यादा है उसे उल्लंघकर आगे जावे नहीं उन के कुल की जो मर्यादा वाली भूमि है उसे जानकर वहांतक जावे ॥ २४ ॥ उस मर्यादित भूमि में रहा हुवा विचक्षण साधु नीचे भूमि भाग का अवलोकन करे परन्तु स्नान गृह अथवा बड़ी नीति के स्थान देखे नहीं क्यों कि इस से किसी समय नग्न स्त्रियादि देखने में आवे तो दोष की उत्पत्ति होवे ॥ २५ ॥ सब इन्द्रियों में समाधिवंत साधु पानी व मिट्टि लाने के मार्ग बीज और हरिकाय जहां पड़े हुवे होवे वैसे स्थान को त्यजता हुवा खड़ा रहे अर्थात् वैसे स्थान में खड़ा रहे नहीं ॥ २६ ॥ पूर्वोक्त प्रकार मर्यादित भूमि में खड़े रहने वाले को गृहस्थ आहार पानी लाकर देवे तो उस में से कल्पने योग्य वस्तु

इच्छिज्जा, पडिगाहिज्जा कप्पिय ॥ २७ ॥ आहरति सिया तत्थ परिसाडिज्ज भोयण ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ २८ ॥ सम्मद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणीय ॥ असजमकारिं नच्चा, तारिस परिवज्जए ॥ २९ ॥ साहट्टु निक्खिवित्ताण, सचित्त घट्टियाणिय ॥ तहेव समणट्ठाए, उदगस पणुल्लिया ॥ ३० ॥ आगहइत्ता चलइत्ता, आहारे पाणभोयण ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिस ॥ ३१ ॥

ग्रहण करे परंतु अकल्पनीय वस्तु ग्रहण करे नहीं ॥ २७ ॥ कदाचित वह भोजन देने वाला दातार साधु को नीचे डालता २ लाकर देवे तो साधु उस दातार को कहे कि इस तरह से लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ २८ ॥ प्राण बीज व हरिकाय का समर्दन करता हुवा साधु को आहार देने के लिये आवे तो उसे असयम करने वाला जानकर उस का परित्याग करे ॥२९॥सचित्त वस्तु में अचित्त वस्तु मीलाकर सचित्त वस्तु पर अचित्त वस्तु रखकर, अथवा सचित्त वस्तु से सघट्न कर के वैसे ही साधु के लिये पानी हिलाकर जो कोई आहार आदि देवे तो साधु उस का त्याग करे अर्थात् वैसा आहारादि ग्रहण करे नहीं ॥३०॥ घर में वर्षादि से सचित्त पानी भराहो उसे अघगाह कर अथवा हरिकाय प्रमुख को दूर कर के पानी व भोजन लावे तो उस लानेवाले को साधु कहे कि इस तरह लाया हुवा मुझे नहीं कल्पता है. ॥ ३१ ॥

पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेणवा॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मेकप्पइ तारिसं॥ ३२॥
एव उदओल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया ओसे ॥ हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अजणे लोणे॥ ३३॥गेरुयवण्णिय सेडिय,सोरट्ठिय पिट्ठकुक्कुसकए॥उक्किट्ठ मससट्ठे,ससट्ठे चव घोधव्वे ॥ ३४ ॥ अससट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेणवा ॥ दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्म जहिं भवे ॥ ३५ ॥ ससट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेणवा ॥

पूरा कर्म[1] वाले हाथ, द्रव्य (कुडछी) अथवा भाजन से आहार पानी देवे तो साधु कहे कि मुझे नहीं कल्पता है ॥ ३२ ॥ ऐसे ही सचित्त पानी से भीगा हुवा, सचित्त पानी से स्निग्ध बना हुवा, सचित्त रज, सचित्त मृत्तिका, या क्षार, हरताल हिंगुलक, मनःशीला, अंजन, लवण, गेरु, पीली मिट्टि, श्वेतमिट्टि, सोराष्ट्रिका, तुरत का पीसा हुवा आटा, तुरत के खांडे हुए फोतरे, तरबुजादिक का रस और इस प्रकार की सचित्त वनस्पति आदि से हाथ भाजन भरा हो तो वैसा और हाथ कुडछी अथवा भाजन पूर्वोक्त वस्तु से खरडाये हुए न होवे परंतु पीछे से दोष लगने जैसा होवे तो वैसा आहार पानी की इच्छा करे नहीं ॥ ३३-३५ ॥ यदि आहार पानी एषणिक निर्दोष होवे और अचित्त वस्तु से

[1] आहार पानी देने के पहिले ही सचित्त पानी से हाथ धोकर लेकर दोष लगाना सो पूर्व कर्म दोष और आहार पानी दिये के बाद धोवे सो पश्चात् कर्म दोष जानना.

दिज्जमाण पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणिअं भवे ॥ ३६ ॥ दोण्हंतु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए ॥ दिज्जमाण न इच्छेज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥ दोण्हंतु भुंजमाणाण दोवि तत्थ निमंतए ॥ दिज्जमाण पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणिय भवे ॥ ३८ ॥ गुव्विणीए उवन्नत्थं, विविहं पाणभोयणं ॥ भुंजमाण विवज्जेज्जा, भुत्तसेस पडिच्छए ॥ ३९ ॥ सिआ य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ॥ उट्ठिया वा निसीइज्जा,

खरडाया हुवा हस्त कुडछी अथवा भाजन से जो कोई देवे तो ग्रहण करे ॥ ३६ ॥ एक वस्तु दो जने के भोगवने वास्ते बनी होवे, उस में से एक जन साधु को लेने के लिये आमंत्रण करे और दूसरा मौन रहे तो उसे देते हुए उस की इच्छा करे नहीं परंतु दूसरे का भाव देखे यदि दूसरे के मनोभाव देने के होवे तो लेवे नहीं तो लेवे नहीं (अथवा निमन्त्रण करने वाला अपना विभाग अलग करके साधु को देवे तो ग्रहण करे) ॥ ३७ ॥ दोनों के भोगवन के लिये साथ वस्तु बनी होवे, और साधु को दोनों ही निमन्त्रणा करते होवे और जो शुद्ध एषणिक होवे तो ग्रहण करे ॥ ३८ ॥ गर्भवती स्त्री के लिये विविध प्रकार के भोजन बनाये होवे, परंतु जहां लग उसने उस भोगना न होवे वहां लग ग्रहण करे नहीं क्यों की उस की इच्छा का भंग होने से गर्भपातादि दोषकी संभावना होती है परंतु उस के भोगवे पीछे बचगया होवे तो उस ग्रहण करे ॥ ३९ ॥ कदाचित् गर्भवती स्त्री पूर्ण मास होने पर साधु को आहार पानी देने के लिये खडी हुइ बैठ जावे और बैठी हुइ

पुरेकम्मेण हत्थेण दव्वीए भायणेणवा॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मेकप्पइ तारिसं॥ ३२॥ एव उदओल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया ओसे ।। हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे॥ ३३॥ गेरुयवण्णिय सेडिय, सोरट्ठिय पिट्ठकुकुस्सकए॥ उक्किट्ठ मससट्ठे, ससट्ठे चेव बोधव्वे ॥ ३४ ॥ असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेणवा ॥ दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्म जहिं भवे ॥ ३५ ॥ ससट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेणवा ॥

पूरा कर्म [1] वाले हाथ, द्रव्य (कुडछी) अथवा भोजन से आहार पानी देवे तो साधु कहे कि मुझे नहीं कल्पता है ॥ ३२ ॥ ऐसे ही सचित्त पानी से भींगा हुआ, सचित्त पानी से स्निग्ध बना हुआ, सचित्त रज, सचित्त मृत्तिका, या क्षार, हरताल हिंगुलक, मनःशीला, अंजन, लवण, गेरु, पीली मिट्टि, श्वेतमिट्टि, सौराष्टिका, तुरत का पीसा हुआ आटा, तुरत के खांडे हुए चावल, तत्बुमादिक का रस और इस प्रकार की सचित्त वनस्पति आदि से हाथ भाजन भरा हो तो वैसा और हाथ कुडछी अथवा भाजन पूर्वोक्त वस्तु से खरडाये हुए न होवे परंतु पीछे से दोष लगने जैसा होवे तो वैसा आहार पानी की इच्छा करे नहीं ॥ ३३ ३५ ॥ यदि आहार पानी एषणिक निर्दोष होवे और अन्नादि अचित्त वस्तु से

[1] आहार पानी देने के पहिले ही सचित्त पानी से हाथ वगैरह धोकर दोष लगाना सो पूर्व कर्म दोष और आहार पानी दिये के पीछे जो दोष लगावे सो पश्चात् कर्म दोष जानना.

कप्पइ तारिसं ॥ ४६ ॥ असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा ॥ जं जाणेज्ज सुणेज्जा, दाणट्ठा पगडं इमं ॥ ४७ ॥ तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे नमे कप्पइ तारिसं ॥ ४८ ॥ असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ॥ जं जाणेज्ज सुणेज्जा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥ ४९ ॥ तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिसं ॥ ५० ॥ असणं पाणगं वावि खाइमं साइमं तहा ॥ जं जाणेज्ज सुणेज्जा, वणिमट्ठा पगडं इमं ॥ ५१ ॥ तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे, नमे कप्पइ

जो आहार, पानी, खादिम व स्वादिम स्वतः की मति से जाने अथवा अन्य के पास से श्रवण करे कि यह दान देने के लिये बनाया हुआ है तो वैसा भक्त पान लेना साधु को क[ल्]पे नहीं और ऐसे भक्त पान देनेवाले को कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ४७-४८ ॥ जो आहार, पानी खादिम व स्वादिम पुण्य के लिये बनाया होवे और उसे स्वतः की मति से जाने अथवा अन्य के कहने से श्रवण करे तो वैसा भक्त पान साधु को अकल्पनीय है और देनेवाले को कहे कि वैसा भक्त पान हम को नहीं कल्पता है ॥ ४९-५० ॥ जो अशन, पान, खादिम व स्वादिम [गृहस्थियों] के लिये बनाया होवे वह स्वतः जाने अथवा अन्य के पास से श्रवण करे तो वैसा आहार साधु को अकल्पनीय है और देनेवाले

निसत्ता वा पुणुट्ठए ॥ ४० ॥ तं भवे भत्तपाणतु संजयाण अकप्पियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे नमे कप्पइ तारिसं ॥ ४१ ॥ थणगं पिज्जमाणी, दारगं वा कुमारियं ॥ तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहारे पाणभोयणं ॥ ४२ ॥ तं भवे भत्तपाणतु संजयाण अकप्पियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ४३ ॥ जं भवे भत्त पाणतु कप्पाकप्पंमि संकियं ॥ दिंतियं पडियाइक्खे नमे कप्पइ तारिसं ॥ ४४ ॥ दगवारएण पिहियं, नीसाए पीढएण वा ॥ लोढेणवा विलेवेण, सिलेसेणवि, केणइ ॥ ४५ ॥ तंच उब्भिंदिओ देज्जा समणट्ठाए व दावए ॥ दिंतियं पडियाइक्खे, नमे

तरी होवे तो वैसा आहार पानी साधु को अकल्पनीय है ॥ ४० ४१ ॥ बालक अथवा बालिका को स्तनपान कराती हुई स्त्री उसे रोता हुवा दूर रखकर पानी भोजन लावे तो वैसा आहार पानी संयति को अकल्पनीय है इस तरह आहार देने वाली को प्रतिषेध करे कि मुझे यह नहीं कल्पता है ॥ ४२ ४३ ॥ जिस भक्त पान में कल्पनीय व अकल्पनीय की शंका होवे वैसा आहार पानी देनेवाले को प्रतिषेध करे कि मुझे यह नहीं कल्पता है ॥४४॥ जो भक्त पान सचित्त पानी के घट में रखा हुवा होवे, पत्थर की शीला से बाजोट से, लोष्ट से अथवा मिट्टी से बंध करके रखा होवे और उस पर लाख का सील किया होवे उस को श्रमण के लिए तोडकर देवे तो देनेवाले को कहे कि ऐसा लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥४५ ४६॥

स्वाइम साइमं तहा ॥ पुप्फेसु होज उम्मीस बीएसु हरिएसु वा ॥ ५७ ॥ त भवे भत्तपाणंतु, संजयाण अकप्पिय ॥ दिंतिय पडियाइक्खे,न मे कप्पइ तारिस ॥ ५८ ॥ असण पाणगं वावि,स्वाइम साइमतहा ॥ उदगमि होजा निक्खित्त उत्तिंग पणगेसु वा ॥ ५९ ॥ त भवे भत्तपाणंतु, सजयाण अकप्पिय ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ६० ॥ असण पाणग वावि, स्वाइम साइम तहा ॥ तेउम्मि होज निक्खित्तं, त च सघट्टिया दए ॥६१॥ तं भवे भत्त पाणतु, संजयाण अकप्पिय ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिस ॥ ६२ ॥ एव उस्सक्किया ओसक्किया,

हरेकाय से मीले हुवे होवे तो वैसा आहार साधु को अकल्पनीय है और आहार देनेवाले को प्रति-षेध करे कि ऐसा आहार लेना मुझ नहीं कल्पता है ॥ ५७ ५८ ॥ जो आहार, पानी खादिम व स्वादिम सचेत पानीपर, कीडी आदि के नागरे पर अथवा लाये हुवे पर, फूल्नपर रखा होवे तो वह आहार साधुको अकल्पनीय है और आहार देनेवाले को कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५९ ६० ॥ जो अशन, पान, खादिम व स्वादिम अग्नि पर रहा होवे अथवा अग्नि का सघट्टा करके देवे तो वह आहारादि साधु को अकल्पनीय है और देने वाले को कहे कि वैसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ ६१ ६२ ॥ ऐसे ही अग्नि में ईंधनादि प्रक्षेप कर, अग्नि में से इंधन निकाल कर, अग्नि को ज्वलित

तारिसं ॥ ५२ ॥ असण पाणगं वावि खाइम साइमं तहा ॥ जं जाणज्ज सुणेज्जवा, समणट्ठा पगड इमं ॥ ५३ ॥ तं भवे भत्तपाणंतु संजयाण अकप्पियं ॥ दितियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥५४॥ उद्देसिय कीयगडं पुइकम्मंच आहडं ॥ अज्झोयर पामिच्च मीसजायं विवज्जए ॥५५॥ उग्गमं से अपुच्छेज्जा, कस्सट्ठा केणवा कडं ? ॥ सोचा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजए ॥ ५६ ॥ असणं पाणगं वावि,

को कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५१ ५२ ॥ जो अशन, पान, खादिम व स्वादिम आदि श्रमण के लिये बनाया होवे और ऐसा स्वयं जाने अथवा अन्य के पास से श्रवण करे तो वह आहार साधु को अकल्पनीय है और आहार देनेवाले को भी कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५३ ५४ ॥ साधु को उद्देश कर बनाया हुवा साधु के लिये मोल लाया हुवा अपने और साधु के लिये मकान २ बनाया होवे उस में से साधु के लिये बनाया हुवा आहार का एक कण अपने लिये बनाया हुवा आहार में रहजावे वैसा पूति कर्म दोष वाला आहार आदि साधु के सन्मुख लाया हुवा, साधु के लिये बनाया हुवा साधु के लिये उधार लाया हुवा, गृहस्थ और साधु यों दोनों के निमित्त भेला बनाया हुवा मिश्र ऐसे दोषवाला आहार को साधु त्याग करे ॥ ५५ ॥ कदापि साधु को नवीन वस्तु देखकर शंका होवे तो उस की उत्पत्ति पूछे यह किसलिये बनाया है ? किसने बनाया है ? ऐसे प्रश्न का उत्तर श्रवण कर निःशंकित बनकर शुद्ध आहार होवे तो ग्रहण करे ॥ ५६ ॥ जो आहार, पानी, खादिम व स्वादिम पुष्प, बीज व

पवडेज्जा हत्थ पाय व लूसए ॥ पुढविजीवेवि हिंसेज्जा जेय तन्निस्सियाजगे ॥६८॥ एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ॥ तम्हा मालोहड भिक्ख, नपडिगेण्हति संजया ॥ ६९ ॥ कद मूल पलबंवा, आम छिन्न च सन्निर ॥ तुबाग सिंगबेर च, आमग परिवज्जए ॥ ७० ॥ तहेव सत्तुचुण्णाइ, कोलचुण्णाइ आवणे ॥ सक्कुलिं फाणिय पूय, अन्न वावि तहाविह ॥ ७१ ॥ विक्कायमाण पसढ, रएण परिफासिय ॥

निसरणी, पाट बाजोट खाट, स्तीला आदि पर पांव रखकर उपर चढे और वहां से आहारादिक लाकर, साधु को देवे तो उसे ग्रहण नहीं करे क्यों कि वैसे अस्थिर अवलम्बन से चढता अथवा उतरता हुवा गृहस्थ नीचे पडजावे तो उस के हाथ पांव आदि अंगोपांग को नुकशान होवे वस्तु का भाजन का नाश होवे और नीचे पृथ्वीकाय व उस के आश्रित रहे हुवे त्रस स्थावर जीवों की घात होवे इत्यादि दोषों को देखकर मेडी आदि के उपर से उतार कर लाइ हुइ भिक्षा ग्रहण करे नहीं ॥ ६७-६९ ॥ साधु सूरणादि कंद, पिंडालु आदि मूल, बिजोरा आदि फल, तोरू आदि शाक, तुम्बा और अदरख इत्यादि वनस्पति कची होवे और उस का छेदन भेदन भी किया होवे परंतु अग्नि आदि शस्त्र के संयोग से पक्व नहीं हुवा होवे तो उसे ग्रहण करे नहीं ॥ ७० ॥ वैसे ही मत्तुआ, बेर का चूर्ण, तिलो की पापडी, गुड की पुरी, लड्डु जलेबी आदि मीठाइ वगैरह दुकान में बीकती होवे, और वह सचित्त रज युक्त मेरा

उज्जालिया, पज्जालिया निव्वाविया ॥ उस्सिंचिया निस्सिंचिया, उव्वत्तिया ओयारिया एए ॥ ६३ ॥ त भवे भत्तपाण तु संजयाण अकप्पियं ॥ दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ६४ ॥ होज्ज कट्ठ सिलं वावि इट्टालं वावि एगया ॥ ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचल ॥ ६५ ॥ न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥ गंभीर झुसिर चेव सव्विंदिय समाहिए ॥ ६६ ॥ निस्सेणिं फलगं पीढ, उस्सवित्ताण मारुहे ॥ मंचं कीलं च पासायं, समणट्ठा एव दावए ॥ ६७ ॥ दुरुहमाणी

कर प्रज्वलित कर अग्नि को बुझाकर, अग्नि पर चढाया हुवा धान्य को उफनता जानकर नीकाले अथवा पानी आदि डालकर दबा कर तथा उसे अग्नि पर से नीचे उतार कर अशनादि साधु को देवे तो वह उन का अकल्पनीय है इस से देने वाले को साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ ६३ ६४ ॥ कीचड वगैरह स्थान से मार्ग उल्लंघने के लिये पत्थर, अथवा काष्ट रखा होवे और वह हलता होवे तो ऐसे मार्ग पर सब इन्द्रियोंकी समाधिवंत साधु गमनकरे नहीं ऐसे मार्गपर चलने से केवल ज्ञानीने असंयम देखा है वैसे ही अप्रकाशित अथवा तृण कचरे वाला स्थान कि जिस में जीवादिक की मालुम न होवे उस पास जाने का त्याग करे ॥ ६५ ६६ ॥ मोक्षार्थी साधु गृहस्थ के यहां गोचरी गया हुवा गृहस्थ के आहार आदि मेडी पर, छत पर या मचान पर होवे, उपर जाने का पंक्तिया आदि का साधन न होने से वह गृहस्थ

पवेइज्जा हत्थ पाय व लूसए ॥ पुढविजीवेवि हिंसेज्जा जेय तन्निस्सियाजगे ॥६८॥
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ॥ तम्हा मालोहड भिक्ख, नपडिगेण्हति
संजया ॥ ६९ ॥ कद मूल पलबवा, आम छिन्न च सन्निर ॥ तुम्बाग सिंगबेर च,
आमग परिवज्जए ॥ ७० ॥ तहेव सत्तुचुण्णाई, कोलचुण्णाइ आवणे ॥ सक्कुलिं
फाणिय पूय, अन्न वावि तहाविह ॥ ७१ ॥ विक्कायमाण पसढ, रएण परिफासिय ॥

निसरणी, पाट बाजोट खाट, खीला आदि पर पांव रखकर उपर चढे और वहां से आहारादिक लाकर, साधु को देवे तो उसे ग्रहण नहीं करे क्यों कि ऐसे अस्थिर अवलम्बन से चढता अथवा उतरता हुआ गृहस्थ नीचे पडजावे तो उस के हाथ पांव आदि अंगोपांग को नुकशान होवे वस्तु का भाजन का नश होवे और नीचे पृथ्वीकाय व उस के आश्रिय रहे हुवे त्रस स्थावर जीवों की घात होवे इत्यादि दोषों को देखकर मेडी आदि क उपर से उतार कर लाइ हुइ भिक्षा ग्रहण करे नहीं ॥ ६७-६९ ॥ साधु सूरणादि कन्द, पिंडालु आदि मूल, बिजोरा आदि फल, तोरई आदि शाक, तुम्बा और अदरख इत्यादि वनस्पति कच्ची होवे और उस का छेदन भेदन भी किया होवे परन्तु अग्नि आदि शस्त्र के संयोग से पक्व नहीं हुवा होवे तो उसे ग्रहण करे नहीं ॥ ७० ॥ वैसे ही मगुआ, बेर का चूर्ण, तिलो की पापडी, गुड की पुरी, लड्डु जलेबी आदि मीठाइ वगैरह दुकान में बीकती होवे, और वह सचित्त रज युक्त वेरो

दितियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिस ॥ ७२ ॥ बहुअट्ठिय पोग्गल अणिमिसवा बहुकंटय ॥ अत्थियं तिंदुयं बिल्लं उच्छुखंड च सिंबलि ॥ ७३ ॥ अप्पेसिया भोय जाए, बहुउज्झियधम्मिए ॥ दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ७४ ॥ तहेवुच्चावयं पाण, अदुवा वारधोवण ॥ ससेइमं चाउलोदग, अहुणाधोय विवज्जए ॥ ७५ ॥ जं जाणेज्ज चिराधोय मईए दंसणेण वा ॥ पडिपुच्छिऊण सोच्चा वा ज च निस्संकियं भवे ॥ ७६ ॥ अजीवं परिणयं णच्चा, पडिगाहेज्ज संजए॥

और साधु को देते होवे तो देने वाले को साधु बर्जे और कहे कि ऐसा लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥७१-७२॥ बहुत गुठली वाले, पोगल नामक फल (सीताफल) अनिमिष नामक फल, बहुत कण्टक वाले फल तिन्दुक वृक्ष के फल बील के फल, इक्षु के टुकडे और शाल्मली के फल इत्यादि प्रकार की वस्तु में खाना थोडा और डालने का बहुत होवे तो ऐसे फल साधु को कोई देवे तो साधु कहे कि ये मुझे नहीं कल्पते हैं ॥ ७३ ७४ ॥ पानी ग्रहण करने की विधि बताते हैं—ऊंचा सुगंध मय पानी सो द्राक्षादि का धोवन और मध्यम जिस में अच्छी सुगंध नहीं है वैसा कांजी का धोवन, अथवा गुड की हंडियों को धोकर नीकला हुवा धोवन कायरोग का धोवन चावल का धोवन, चौवीस प्रकार के धान्य का धोवन, वगैरह धोवन तत्काल (एक मुहूर्त के पहिले) के बने हुए होवे तो ग्रहण करे नहीं

अहं सक्किय भवेज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥ ७७ ॥ थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहिमे ॥ मामे अच्चंबिलपुइं, नालं तिण्हं विणित्तए ॥ ७८ ॥ तच अच्चंबिलपूअं, नालंतिण्हं विणित्तए ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ७९ ॥ तच होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छियं ॥ तं अप्पणा न पिबे, नो

क्यों कि इतनी देर तक धोवन मीश्र रहता है अधिक काल में सब जीवों चवने से अचित्त बन जाता है ॥ ७ ॥ पूर्वोक्त प्रकार के धोवन बनाये बहुत देर होगइ होवे ऐसा उस के वर्णादि पलटने स अपनी मति से जाने, दृष्टि से देखे और पूछकर शंका रहित होवे अर्थात् सम्यक् प्रकार से शस्त्र परिणम कर अचित्त बनगया है ऐसी शंका रहित बनकर उसे ग्रहण करे परंतु ग्रहण करने ऐसा विचार होवे कि यह धोवन खपेगा कि नहीं, पीने योग्य है कि पीने योग्य नहीं है ऐसी शंका मन में आजावे तो उस गृहस्थ के पास से थोडासा धोवन अपने हाथ में लेकर उस का आस्वादन करके निश्चय करे ॥ ७६ ७७ ॥ इस तरह निश्चय करने के लिये गृहस्थ को साधु कहे कि इस में से थोडासा मुझे चखने के लिये दो क्यों कि अतिखट्टा सडा हुवा और जिस पानी से तृषा नहीं मीटे वैसा पानी मुझ नहीं चाहिये ॥ ७८ ॥ ऐसा अति खट्टा, सडा हुवा और तृषा का निवारन नहीं कर सके वैसा पानी यदि कोइ देवे तो कहे कि मुझे ऐसा नहीं कल्पता है ॥ ७९ ॥ पूर्वोक्त पानी इच्छा नहीं होने पर अथवा शून्य उपयोग से यदि

दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ७२ ॥ बहुअट्ठिय पोग्गल अणिमिसवा बहुकंटय ॥ अत्थियं तिंदुय बिल्लं, उच्छुखंड च सिंबलि ॥ ७३ ॥ अप्पेसिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मिए ॥ दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ७४ ॥ तहेवुच्चावयं पाण, अदुवा वारधोवणं ॥ ससेइम चाउलोदग, अहुणाधोय विवज्जए ॥ ७५ ॥ जं जाणेज्ज चिराधोय मईए दंसणेण वा ॥ पडिपुच्छिऊण सोच्चा वा, जं च निस्संकियं भवे ॥ ७६ ॥ अजीव परिणयं णच्चा, पडिगाहेज्ज संजए॥

और साधु को देते हाथ से देने वाले को साधु वर्जे और कहे कि ऐसा लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥७१-७२॥ बहुत गुठली वाले, पोगल नामक फल (सीताफल) अनिमिष नामक फल, बहुत कंटक वाले फल तिंदुक वृक्ष के फल, बील के फल, इक्षु के टुकडे और शाल्मली के फल इत्यादि प्रकार की वस्तु में खाना थोडा और डालने का बहुत होवे वा ऐसे फल साधु को कोई देवे तो साधु कहे कि ये मुझे नहीं कल्पते हैं ॥ ७३ ७४ ॥ पानी ग्रहण करने की विधि बताते हैं—ऊंचा सुगंधमय पानी सो द्राक्षादि का धोवन और अथवा जिस में अच्छी सुगंध नहीं है वैसा कांजीका धोवन, अथवा गुड की हंडियों को धोकर नीकला हुवा धोवन कायरोक का धोवन चांवल का धोवन, चोवीस प्रकार के धान्य का धोवन, वगैरह धोवन तत्काल (एक मुहूर्त के पहिले) के बने हुए होवे तो ग्रहण करे नहीं

अहं सक्किय भवेज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥ ७७ ॥ थावमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहिमे ॥ मामे अच्चत्तिल पूइ, नाल तिण्ह त्रिणित्तए ॥ ७८ ॥ तच अच्चंपिल पूअं, नालतिण्ह त्रिणिचए ॥ दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ७९ ॥ तच होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छियं ॥ त अप्पाण न पिवे, नो

क्यों कि इतनी देर तक धोवन मीश्र रहता है अधिक काल में सब जीवों चवने से अचित्त बन जाता है ॥ ७८ ॥ पूर्वोक्त प्रकार के धोवन बनाये बहुत देर होगइ होवे ऐसा उस के वर्णादि पलटने स अपनी मति से जाने, दृष्टि से देखे और पूछकर शंका रहित होवे अर्थात् सम्यक् प्रकार से शस्त्र परिणम कर अचित्त बनगया है ऐसी शंका रहित बनकर उसे ग्रहण करे परंतु ग्रहण करने ऐसा विचार होवे कि यह धोवन स्वपेगा कि नहीं, पीने योग्य है कि पीने योग्य नहीं है ऐसी शंका मन में आजावे तो उस गृहस्थ के पास से थोडासा धोवन अपने हाथ में लेकर उस का आस्वादन करके निश्चय करे ॥ ७६ ७७ ॥ इस तरह निश्चय करने के लिये गृहस्थ को साधु कहे कि इस में से थोडासा मुझे चखने के लिये दो क्यों कि अतिखट्टा सडा हुवा और जिस पानी से तृषा नहीं मीटे वैसा पानी मुझ नहीं चाहिये ॥ ७८ ॥ ऐसा भवी खट्टा, सडा हुवा और तृषा का निवारन नहीं कर सके वैसा पानी यदि कोइ देवे तो कहे कि मुझे ऐसा नहीं कल्पता है ॥ ७९ ॥ पूर्वोक्त पानी इच्छा नहीं होने पर अथवा शून्य उपयोग से पत्रे

वि असस्स शावए ॥ ८० ॥ एगत मवक्कमिचा, अचित्त पडिलेहिया॥जय परिठवेज्जा परिठ्ठप्प पडिक्कमे ॥ ८१ ॥ सिया य गोयरग्ग गओ इच्छेज्जा परिभोत्तुय ॥ कोट्ठग भित्तिमूल वा, पडिलेहिचाण फासुय ॥ ८२ ॥ अणुन्नविचु मेहावी, पडिच्छन्नमि संवुडे ॥ हत्थग सपमज्जिचा तत्थ भुजेज्ज सजए ॥ ८३ ॥ तत्थ से भुजमाणस्स, अट्ठियं कंटओ सिया ॥ तणकट्ठ सक्करं वावि, अन्नवावि तहाविह ॥ ८४ ॥ त उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए ॥ हत्थण त गहेऊण एगंत मवक्कमे

मानावे तो आप स्वयं उसे पीवे नहीं और अन्य साधु को भी देवे नहीं, परतु उसे लेकर एकांत में जाकर प्रासुक अचित्त भूमि देखकर यत्ना पूर्वक परठावे परिठाकर इरिया वहिका कायोत्सर्ग करे ॥ ८० ८१ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु तपादिक से अथवा रोगादिक के कारन से पथ्यवस्तु भोगवने की इच्छा करे तो वहां कोइ शून्य गृह अथवा भित्ति के मूल के पास का जीव रहित स्थान देखे वह स्थान ऊपर से ढका हुवा व छत्र वाला होवे तो उस के स्वामी की आज्ञा लेकर वह पण्डित साधु अपने हस्त पांव को पमार्जकर वहां ही आहार करे ॥ ८२-८३ ॥ उक्त रीति से वहां आहार करते हुए उस में गुठली, कण्टक तृण काष्ट का टुकडा, कंकर बालु रज, मक्षिकादि कलेवर इत्यादि निकले तो उस जिव्हाग्र से उछालकर फैंके नहीं और मुख से थूके नहीं, परतु हाथ में ग्रहण कर एकांत में जावे

॥ ८५ ॥ एगत मवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया ॥ जय परिट्ठवेज्जा, परिट्ठप्प-पाडिक्कमे ॥ ८६ ॥ सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सेज्जमागम्म भोत्तुय ॥ सपिंड पाय मागम्म,उडुय से पडिलेहिया॥ ८७ ॥ विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी॥ इरियावहियमायाय, आगओय पडिक्कमे ॥ ८८ ॥ आभोइत्ताण नीसेस, अइयार जहक्कम ॥ गमणागमणे चेव, भत्तपाणे च सजए ॥ ८९ ॥ उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥ आलोए गुरुसगासे, ज जहा गहिय भवे ॥ ९० ॥ न

वहां फासुक भूमि देखकर यत्ना पूर्वक परिठावे परिठाये पीछे इयावहीका कायोत्सर्ग करे ॥ ८४-८६ ॥ कदाचित् भिक्षु अपने स्थान पर आकर आहार भोगवने की इच्छा करे तो पात्र में भोजन लेकर अपने उपाश्रय बाहिर लघुनीत आदि भूमिका की प्रतिलेखना करे ॥ ८७ ॥ फिर विनय पूर्वक मस्तक नमाकर निसिही मत्थएण वदामि ऐसा शब्दोच्चार करता हुवा स्थानक में प्रवेश करके गुरु के नजीक आहारादि रखकर ईर्यावही प्रतिक्रमे अर्थात् कायोत्सर्ग करे ॥ ८८ ॥ कायोत्सर्ग में गोचरी के लिये गमनागमन करते छोटे बडे जीवों की विराधना हुई होवे अथवा आहार ग्रहण करते छोटा बडा दोष लगा होवे उसे अनुक्रम से याद करे ॥ ७९ ॥ कायोत्सर्ग किये पीछे जिस प्रकार आहारादि ग्रहण किया होवे वैसे ही निष्कपट भाव से चित्त की व्याकुलता रहित शुद्ध मन से गुरु के सन्मुख प्रगट करे ॥ ९० ॥ पूर्व पश्चात्

सम्म मालोइयं कुच्चा, पुव्विं पच्छाव ज कड ॥ पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसिट्ठो चिंतए इम ॥११॥ अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ॥ मोक्ख साहण हेउस्स साहुदेहस्स धारणा ॥ १२ ॥ नमोक्कारेण पारेत्ता, करित्ता, जिण सथव ॥ सज्झाय पट्ठवित्ताणं वीसमेज्ज खण मुणी ॥ १३॥ वीसमतो इम चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ ॥ जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहु होज्जामि तारिओ ॥ १४ ॥ साहवो ता चियत्तेण,

जो दोष लगा होवे उस समय कदाचित् उस की सम्यक् प्रकार से आलोचना नहीं हुई होवे तो फीर भी उस का कायोत्सर्ग करे और इस प्रकार चिंतवना करे कि अहो जिन भगवानने साधुके लिये उपजीविका करने की किस प्रकार की निर्वद्य पाप रहित वृत्ति बतलाइ है ? इस से सयम का अवलम्बन भूत शरीर का भी पालन होवे और मोक्ष का भी साधन होवे ॥ ९१ ९२ ॥ उक्त प्रकार कायोत्सर्ग में विचार करके नमस्कार मंत्र का उच्चार करता हुवा कायोत्सर्ग पारे, फीर तीर्थंकर की स्तुतिरूप लोगस्सका पाठ कहे फीर सिद्धांत का पांच गाथा की स्वाध्याय करे और क्षणमात्र विश्राम लेवे ॥ ९३ ॥ कर्म निर्जरा रूप लाभ का अर्थी साधु विश्राम लेता हुवा ऐसा कल्याणकारी अर्थ का चिंतवन करे कि जो साधु मेरे पर अनुग्रह कर मेरे लाये हुए आहार में से थोडा बहुत ग्रहण करे तो मैं संसार समुद्र से तीर जाउं ॥ ९४ ॥ इस प्रकार विचार करके प्रथम सब से बडे साधु को फीर छोटे साधु को यों अनुक्रम से सब साधुओं

निमतिज्ज जहक्कम ॥ जइ तत्थ केइ इच्छेज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुजए ॥ १५ ॥ अह
कोइ न इच्छेज्जा तओ भुजिज्ज एगओ ॥ आलोए भायणे साहू, जय अपरिसाडियं
॥ ९६ ॥ तित्तगं व कडुय व कसाय, अम्बिल व महुर लवण वा ॥ एयंलद्धमन्नत्थ
पउत्त, महुघय व भुजिज्जा सजए ॥ ९७ ॥ अरस विरस वावि, सूइय वा असूइय ॥
उल्लवा जइवा सुक्क, मथु कुम्मास भोयणं ॥ ९८ ॥ उप्पन्न नाइ हीलिज्जा, अप्पवा
बहु फासुय ॥ मुहा लद्ध मुहाजीवी, भुजिज्जा दोस वज्जिय ॥९९॥ दुल्लहाओ मुहादाई,

को आमंत्रण करे इस तरह आमंत्रण करते यदि कोई साधु आहार करने की इच्छा करे तो उन के साथ आहार करे ॥ ९५ ॥ यदि कोई साधु आहार करनेकी इच्छा नहीं करे तो आप अकेला ही रागद्वेष रहित चौडे मुखवाले प्रकाशित भाजन में यत्ना पूर्वक नीचे नहीं डालता हुवा आहार करे ॥ ९६ ॥ तिक्त, कटु कषाय, खट्टा, मीठा व खारा, ऐसे पदार्थ गृहस्थने अपने लिये बनाये होवे तो उसमें से जो साधु को प्राप्त होवे उसे निर्दोष जानकर मधुघृत समान मानकर भोगवे ॥ ९७ ॥ अरस या विरस, अच्छा या बुरा, आला या शुष्क, बोरकूट अथवा उडद के बाकले आदि किसी प्रकारका थोडा या बहुत आहार सूत्रोक्त विधि से निर्दोष प्राप्त हुवा होवे तो उसे भोगवता हुवा दातार की निंदा करे नहीं वैसे ही आहार की निंदा करे नहीं और विचार करे कि गृहस्थ के पास से यह जो मीला है यह उस का कार्य किये बिनाही मीला है यों निर्दोष आहार से निर्वाह करनेवाला साधु दोष रहित आहार भोगवे ॥ ९९ ॥ अब तीर्थ-

सम्म मालोइय कुज्जा, पुव्वि पच्छाव ज कड ॥ पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसिट्ठो चितए इम ॥११॥ अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया ॥ मोक्ख साहण हेउस्स साहुदेहस्स धारणा ॥ १२ ॥ नमोक्कारेण पारेत्ता, करित्ता, जिण-संथव ॥ सज्झाय पट्ठवित्ताणं वीसमेज्ज खण मुणी ॥ १३॥ वीसमंतो इम चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ ॥ जइ मे अणुग्गह कुज्जा, साहु होज्जामि तारिओ ॥ १४ ॥ साहवो तो चियत्तेण,

जो दोष लगा होवे उस समय कदाचित् उन की सम्यक् प्रकार से आलोचना नहीं हुई होवे तो फीर भी उस का कायोत्सर्ग करे और इस प्रकार चिंतवना करे कि अहो जिन भगवानने साधुके लिये उपजीविका करने की किस प्रकार की निर्दोष पाप रहित वृत्ति बतलाइ है ? इस से संयम का अवलम्बन भूत शरीर का भी पालन होवे और मोक्ष का भी साधन होवे ॥ ९१-९२ ॥ उक्त प्रकार कायोत्सर्ग में विचार करके नमस्कार मंत्र का उच्चार करता हुवा कायोत्सर्ग पार फीर तीर्थंकर की स्तुतिरूप लोगस्सका पाठ कहे फीर सिद्धांत का पांच गाथा की स्वाध्याय करे और क्षणमात्र विश्राम लेवे. ॥ २३ ॥ कर्म निर्जरा रूप लाभ का अर्थी साधु विश्राम लेता हुवा ऐसा कल्याणकारी अर्थ का चिंतवन करे कि जो साधु मेरे पर अनुग्रह कर मेरे लाये हुए आहार में से थोडा बहुत ग्रहण करे तो मैं संसार समुद्र से तीर जाउं ॥ २४ ॥ इस प्रकार विचार करके प्रथम सब से बडे साधु को फीर छोटे साधु को यों अनुक्रम से सब साधुओं

॥ पिण्डैषणा नामक पचमाध्ययनस्य द्वीतीयोद्देश ॥

पडिग्गह सलिहित्ताण, लेयमायाए सजए ॥ दुगधवा सुगधवा, सव्व भुजे न छड्डुए ॥ १ ॥ सेज्जा निसीहियाए, समावन्नोय गोयरे ॥ अयावयट्ठा भोच्चाण, जइ तेण न सथरे ॥ २ ॥ तओ कारणसमुप्पन्ने, भत्तपाण गवेसए ॥ विहिणा पुव्व-वुत्तेण, इमेण उत्तरेणय ॥ ३ ॥ कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेणय पडिक्कमे ॥

आहार करने की जो विधि प्रथम उद्देशे में कही वही दूसरे उद्देशे में कहते है—साधु पुराना धान्य का दुर्गंधी आहार अथवा मोदकादि सुगंधि आहार जैसा मीला होवे वैसा ही सब आहार भोगव लेवे पात्रा को जो लेप लगा होवे उसे भी पूछ कर खा जावे और कुच्छ भी छोडे नहीं ॥ १ ॥ स्थानकमें अथवा स्वाध्यायादि स्थानक में रहा हुवा साधु प्रथम अध्ययन में कहे अनुसार गोचरी करके आहार करे परंतु उतने आहार से क्षुधा शांत नहीं होवे तो कारणवशात पूर्वोक्त विधि से पुनः भक्तपान की गवेषणा करे ॥ २ ३ ॥ निग्रंथ साधु ग्रामादिक में भिक्षा का काल जानकर भिक्षा का समय होने पर अपने स्थान से गोचरी के लिये निकले और जितना आहार मिले उतना ही आहार ग्रहण कर भिक्षा काम पूर्ण होवे ही शीघ्रमेव पीछा फीर कर स्थान" में आजावे अकाल-विना समय की

मुहा जीवी वि दुल्लहा ॥ मुहादाई मुहाजीवी, दोन्नि गच्छंति सुग्गइ ॥१००॥ इति पिण्डेसणाज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥ ५ ॥ १ ॥ * *

कर भगवान कहते हैं कि बिनास्वार्थ से निर्दोष आहार के दातार भी थोडे हैं और निःस्पृह वृत्ति से निर्दोष आहार ग्रहण करनेवाले भी थोडे हैं निर्दोष आहार के दातार सुमुख मुमुख भायापति जैसे और निर्दोष आहार ग्रहण करनेवाले सुदर्शनादि अनगार जैसे यों दोनों ही सुगति में जाते हैं ॥ १०० ॥ यह पिण्डेषणा नामक पांचवे अध्ययन का प्रथम उद्देशा संपूर्ण हुवा ॥ ५ ॥ १ ॥ ×

घत्रो ।चिट्ठित्ताण व सजए ॥ ८ ॥ अग्गल फलिह दार, कवाड वा विसजए ॥ अवलंबिया न चिट्ठेज्जा गोयरग्गगओ मुणी ॥९॥ समण माहण वा वि, किविण वा वणीवगं ॥ उवसकमत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥ १० ॥ त अइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे ॥ एगत मवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठेज्ज सजए ॥ ११ ॥ वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्सवा ॥ अप्पत्तियं सिया होज्जा, लहुत्त पवयणस्सवा ॥ १२ ॥ पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओतम्मि नियत्तिए ॥ उवसकमिज्ज

कि ी स्थान पेठे नहीं और बैठकर धर्मकथा भी कहे नहीं ॥ ८ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा मुनि भोगल, कपाट के फलिये, पारसाल अथवा कमाड का अवलम्बन करके खडा रहे नहीं ॥ ९ ॥ शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण कृपण, भिखारी भक्त पान के लिये द्वार के सन्मुख खडे होवे तो उन को उल्लंघकर गोचरी के लिये गया हुवा संयति घर में प्रवेश करे नहीं, वैसे ही उन की दृष्टिमें आवे वैसा खडा भी रहे नहीं; परंतु एकांतमें जाकर दृष्टि गत न होवे वैसे खडा रहे ॥ १० ११ ॥ भिक्षाचरों का उल्लंघन कर प्रवेश करने से देनेवाले व मंगनेवाले को अथवा दोनों को साधु के लिये अप्रीति होने और सिद्धांत जिन वचन की भी लघुता होवे ॥ १२ ॥ दातारने उन श्रमण दिक को जो देने का होवे सो देकर निकाल दिये पीछे और वह

अकालं च विवज्जेत्ता, काल काल समायरे ॥ ४ ॥ अकाले चरासि भिक्खू काल न पडिलेहसि ॥ अप्पाण च किलामेसि, सन्निवेस च गरिहासि ॥ ५ ॥ सइ काले चरे भिक्खू कुज्जा पुरिसकारिय ॥ अलाभो त्ति न सोएज्जा, तवात्ति अहि-यासए ॥ ६ ॥ तहे वुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया ॥ तउज्जुय न गच्छेज्जा, जयमेव परक्कमे ॥ ७ ॥ गोयरग्गपविट्ठोअ, न निसीएज्ज कत्थइ ॥ कहन्न न पय

गोचरी का त्याग करे परन्तु गोचरी के काल में ही साधु गोचरी के लिये जावे ॥ ४ ॥ अहो साधु ! किसी ग्रामादिक में अकाल में अर्थात् भिक्षा के समय बिना तू गोचरी जावेगा और भिक्षा का समय नहीं मानेगा तो तू वहां किलामना पावेगा और सन्निवश (ग्रामादिक) की भी तू निन्दा करेगा ॥ ५ ॥ इस लिये भिक्षा का समय होने पर साधु को गोचरी के लिये उद्यम करके जाना चाहिये इतना करने पर यदि गोचरी न मीले तो हीनदीन न होते हुए विचार करना की मेरे लाभांतराय है जिससे आहार मीला नहीं परंतु मुझे सहज में तप हुआ है यों समभावसे क्षुधा परिषह सहन करना ॥६॥ उक्त प्रकार गोचरीकेलिये गया हुवा साधु हंस चिड़िया आदि छोटे बडे पक्षियों चुगने के लिये बैठे हो तो उन के सन्मुख जावे नहीं परंतु यत्ना पूर्वक दूसरे मार्ग से वे पक्षियों उड़न न पावे वैसे जावे ॥ ७ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु

घम्मो, चिट्ठिचाण व सजए ॥ ८ ॥ अग्गल फलिह दार, कवाड वा विसजए ॥ अवलंबिया न चिट्ठेज्जा गोयरग्गगओ मुणी ॥९॥ समण माहण वा वि, किविण वा वणीमग ॥ उवसकमत भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व सजए ॥ १० ॥ त अइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे ॥ एगत मवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठेज्ज सजए ॥ ११ ॥ वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्सवा ॥ अप्पत्तियं सिया होज्जा, लहुत्त पवयणस्सवा ॥ १२ ॥ पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओतम्मि नियत्तिए ॥ उवसकमिज्ज

किसी स्थान बैठे नहीं और बैठकर धर्मकथा भी करे नहीं ॥ ८ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा मुनि भोगल, कपाट के पीछे, द्वारसाख अथवा कपाट का अवलम्बन करके खडा रहे नहीं ॥ ९ ॥ शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, भिक्षाचरी भक्त पान के लिये द्वार के सन्मुख खडे होवे तो उन को उल्लंघकर गोचरी के लिये गया हुआ साधु घर में प्रवेश करे नहीं, वैसे ही उन की दृष्टि में आवे वैसा खडा भी रहे नहीं; परंतु एकांत में जाकर दृष्टि गत न होवे वैसा खडा रहे ॥ १० ॥ ११ ॥ भिक्षाचरों का उल्लंघन कर प्रवेश करने से देनेवाले व लेनेवाले को अथवा दोनों को साधु के लिये अप्रीति होवे और सिद्धांत जिन वचन की भी लघुता होवे ॥ १२ ॥ दातारने उन श्रमणादिक को जो देने का होवे सो देकर निकाल दिये पीछे और वह

भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥ १३ ॥ उप्पलं पउमंवावि, कुमुयं वा मगदंतियं ॥ अन्नंवा पुप्फ सच्चित्त, तंच सलुंचिया दए ॥ १४ ॥ तं भवे भत्तपाणंतु संजयाणं अकप्पियं ॥ दितियं पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिसं ॥ १५ ॥ उप्पलं पउमं वावि कुमुयं वा मगदंतियं ॥ अन्नंवा पुप्फ सच्चित्त, तंच सम्मद्दिया दए ॥ १६ ॥ तं भवे भत्तपाणंतु, संजयाण अकप्पियं ॥ दितियं पडियाइक्खे, नमे कप्पइ तारिसं ॥ १७ ॥ उप्पलं पउमं वावी, कुमुयं वा मगदंतियं, अन्नंवा पुप्फसच्चित्त, तंच संघट्टिया दए

वहां से चले गये पीछे साधु भक्त पान के लिये गृहस्थ के गृह में आहार पानी के लिये प्रवेश करे ॥१३॥ उत्पल कमल पद्म कमल कुमुद, मालती के पुष्प, और अन्य भी वैसी भांति के सचित्त पुष्पों का छेदन भेदन कर साधु को गृहस्थ देवे तो वह भक्त पान साधु को अकल्पनीय है और दातार को कहे कि वैसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ १५ ॥ उत्पल कमल पद्म कमल कुमुद, मालती का पुष्प और ऐसे अन्य सचित्त पुष्पों का सम्मर्दन कर कोई गृहस्थ देवे तो साधु को अकल्पनीय है और ऐसे देनेवाले दातार को प्रतिषेध करे कि वैसा आहार पानी लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ १६ १७ ॥ उत्पल कमल, पद्म कमल, चंद्र विकासी कमल, मोगरे के पुष्प और अन्य सचित्त पुष्प का संघट्ट करके

॥ १८ ॥ त भवे भत्तपाणतु सजयाण अकप्पिय, दिंतिय पडियाइक्खे, न मेकप्पइ तारिस ॥ १९ ॥ सालुयवा विरालिय, कुमुय उप्पलनालिय ॥ मुणालिय सास वनालिय, उच्छुखड अनिव्वुडं ॥ २० ॥ तरुणग वा पवाल, रुक्खस्स तणगस्सवा॥ अन्नस्स वावि हारियस्स, आमग परिवज्जए ॥ २१ ॥ तरुणियं वा छेवाडिं, आमिय भज्जिय सइ ॥ दिंतिय पडियाइक्ख, नमे कप्पइ तारिस ॥२२॥ तहा कोलमणुस्सिन्न वेलुय कासवनालिय ॥ तिल पप्पडग नीम, आमग परिवज्जए ॥ २३ ॥ तहेव

माए म। भवे ता वैसा भक्त पान उन को अकल्पनीय है और दातार को कहे कि वैसा लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ १८ १९ ॥ कमल का कद पलाश का कंद, चंद्र विकासी कमल उत्पल कमल की नालिका, कमल के तंतु सरसव की नालिका, और इक्षु का टुकडा, यह सचित्त वस्तुओं वैसे ही वृक्ष तृण अथवा अन्य हरिकाया के कचे अंकूर शस्त्र परिणत न होवे तो उन का त्याग करे ॥ २० २१ ॥ कची मुग ममुख की फली कची अथवा तृणादिकमें एकवक्त भूजी हुइ होवे वैसी फली देनेवाले दातार को साधु मतिषेधे कि ऐसा मुझे नहीं कल्पता है ॥२२॥ वैसे ही बोर का कण, वंशकरेला, श्रीपर्ण वृक्ष का फल व तालिपापडी, निम्ब फल ये सब नहीं पकाये हुए और कचे होवे तो उन का त्याग करे ॥ २३ ॥ वैसे ही चांवल का

चाउलपिट्ठ, वियडवा तत्तानिव्वुड ॥ तिलपिट्ठ पूइ पिन्नाग, आमग परिवज्जए ॥ ॥ २४ ॥ कविट्ठ माउलिंगच, मूलग मूलगत्तिय ॥ आम असत्थ परिणय, मणसावि न पत्थए ॥ २५ ॥ तहेव फलमथूणि, वीय मथूणि जाणिया ॥ विहेलग पियालच, आमग परिवज्जए ॥ २५ ॥ समुयाण चर भिक्खू कुल उच्चावय सया ॥ ॥ नीय कुल मइक्कम्म, ऊसढ नाभि धारए॥ २७ ॥ अदीणो वित्तिमेसेज्जा, नविसी एज्ज पंडिए ॥ अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायन्ने एसणारए ॥ २८ ॥ बहु परघरे

मात्र धोवन का पानी एक मुहूर्त पहिले का वणा मीश्र गरम पानी, तील का चूरा सरसव कनका चूरा वगैरह कचा होवे तो उस का त्याग करे ॥ २४ ॥ कबीट, बीजोरा, पत्ते सहित मूला और मूले की कातली ये कच्चे व शस्त्र-परिणत न होवे तो उस की मन से भी इच्छा करे नहीं ॥ २५ ॥ वैसे ही फल का चूर्ण, बीज का चूर्ण, बहेडे राजन ये सब कच्चे का त्याग करे ॥ २६ ॥ निरंतर भिक्षा करने वाले साधु ऊंच नीच कुल में सदैव सामुदानिक गौचरी करे नीच (निर्धन) कुल को छोडकर ऊंच [धनीक रहनेवाले] के कुल में गौचरी करे नहीं ॥ २७ ॥ पण्डित साधु अदीन वृत्ति से आहार की गवेषणा करे और आहार नहीं मीलने से खेदित होवे नहीं अच्छा आहार में मूर्च्छित नहीं होता हुवा आहार के प्रमाण के ज्ञाता दोष रहित अशनादिक लेने में सावधान होवे ॥ २८ ॥ गृहस्थ के घर में विविध प्रकार के

अत्थि, विविह खाइम साइम॥न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो न वा ॥२९॥
सयणासण वत्थवा भत्तपाणं व संजए॥अर्दितस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ
॥ ३० ॥ इत्थियं पुरिसं वावि डहरवा महल्लगं ॥ वंदमाणं न जाएज्जा, नोयणं
फरुसं वए ॥ ३१ ॥ जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे ॥ एव मन्नेसमाणस्स,
सामण्ण मणुचिट्ठई ॥ ३२ ॥ सिया एगइओ लद्धु, लोभेण वि णिगूहइ ॥ मामेय

बहुत खादिम स्वादिम बने हुए हैं परतु उस में से गृहस्थ साधु को नहीं देवे तो उस पर क्रोध करे नहीं
परंतु पण्डित साधु विचार करे कि यदि उस की इच्छा अपने को देने की होवे तो देवे और न होवे तो
न दे ॥ २९ ॥ वैसे ही शयन, आसन, भक्तपान वगैरह साधु प्रत्यक्ष देखते होवे और वह नहीं देवे तो
उस पर क्रोध करे नहीं ॥ ३० ॥ स्त्री, पुरुष, बालक अथवा वृद्ध साधु को नमस्कार करे तो उन के
पास याचना करे नहीं कदाचित् भक्ति भाव वाला जानकर उस के पास याचना करे और वह वस्तु
विद्यमान होने पर भी नहीं देवे तो उसको कठोर वचन बोले नहीं ॥ ३१ ॥जो कोइ साधु को वंदना न करे तो
उस पर क्रोध करे नहीं और कोइ वंदना करे तो उस से अभिमान करे नहीं यों पूर्वोक्त प्रकार जिनाज्ञानुसार
मध्यस्थभाव से चलने वाले साधु का साधुपना रहता है ॥३२॥ किसी समय साधु को गोचरी करते श्रेष्ठ मनो॰

दाइय सत एहूण सयमायए ॥ ३३ ॥ अत्तट्ठा गुरुआ लुद्धो बहु पाव पकुव्वइ॥
दुत्तोसओ य सो होइ निव्वाण च न गच्छइ ॥ ३४ ॥ सिया एगइओ लद्धु विविह
पाण भोयण ॥ भद्दग भद्दग भोच्चा, विवन्न विरसमाहरे ॥ ३५ ॥ जाणतु ता
इमे समणा, आययट्ठी अय मुणी ॥ सतुट्ठो सेवए पत लूहवित्ती सुतोसओ ॥ ३६ ॥
पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माण कामए ॥ बहु पसवइ पाव, मायासल्ल च कुव्वइ

आहार की प्राप्ति हुइ होवे वो उस आहार में लुब्ध बन ऐसा विचार कि यदि ऐसा सरस आहार गुरु को बताऊंगा तो वे ले लेवेंगे इस से निरस आहार से सरस आहार को छिपावे ॥ ३३ ॥ ऐसा लुब्ध व अपना स्वार्थ साधन में तत्पर ऐसा साधु बहुत पाप का उपार्जन करता है उस को कदापि संतोष नहीं होता है और ऐसा साधु निर्वाण—मोक्ष में नहीं जासकता है ॥ ३४ ॥ कोई एक साधु अपनी मिथ्या प्रशंसा के लिये विविध प्रकार के सरस आहार की प्राप्ति हुइ होवे उस मार्ग में भोगव लेवे और निरस आहार गुरु के सन्मुख लावे ॥ ३५ ॥ और मन में ऐसा समजे कि ये साधु मुझे ऐसा मानेंगे कि यह मुनि आत्मार्थी है संतोषी बनकर प्रांत अन्त आहार भोगवता है और सदैव रुक्ष वृत्तिवाला है ॥ ३६ ॥ ऐसे मुनियों के लिये तीर्थंकर भगवान कहते हैं कि अहो साधुओं ! जो साधु मान पूजा का अर्थी बना हुवा यश कीर्ति की अभिलाषावाला होता है वह बहुत पाप का उपार्जन करता है और माया शल्य करने वाला होता

॥ ३७ ॥ सुरवा मेरगवा वि, अन्न वा मज्जग रस ॥ स सक्ख न पिबे भिक्खू जस सारक्खमप्पणो ॥ ३८ ॥ पियर एगइओ तेणो, न मे कोइ वियाणइ ॥ तस्स पस्सह दोसाइ, नियडिं च सुणेहमे ॥ ३९ ॥ वड्ढइ सोंडिया तस्स, मायामोस च भिक्खुणो ॥ अयसाय अनिव्वाण, सयय च असाहुया ॥ ४० ॥ निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ॥ तारिसो मरणतेवि, न आराहेहि सवर ॥ ४१ ॥

है ॥ ३७ ॥ जिस का केवली भगवान ने सदैव प्रतिषेध किया है वैसा पिष्टादिक का दारु अथवा अन्य मदिरादि (मादक पदार्थ) रस को अपने संयम की रक्षा करने वाले भासन करे (पीवे) नहीं ॥ ३८ ॥ कोई साधु चोरी से एकांत में मदिरा का पान करे और विचारे कि यहां मुझे कोई नहीं जानता है परंतु अहो शिष्यों ! उस के दोषों को मैं कहता हूं सो सुनो—वह मदिरा पीने वाला प्रथम माया कपट करता है, उस का भोगो में आसक्त पना बढता है, उस को माया मृषा करना पडता है उस की स्वपक्ष व पर पक्ष में अपकीर्ति होती है, उसकी सदैव अतृप्ति होती है और पापार्थ से असाधुता होती है ॥३९-४०॥ जैसे चोर द्रव्यादि केलिये सदैव उद्वेगवाला होता है वैसे ही वह दुर्मति साधु मदिरा पान रूप अपने कर्म में सदैव उद्वेग रहता है वैसा साधु मरणांत में भी संवर धर्म की आराधना नहीं कर सकता है ॥ ४१ ॥

आयरिए नाराहेइ समणेयावि तारिसो ॥ गिहत्था त्रिण गारिहाति जेण जाणानि तारिस ॥ ४२ ॥ एव तु अगुणप्पेही, गुणाणच विवज्जओ ॥ तारिसो मरणतेवि नाराहेइ सवर ॥ ४३ ॥ तव कुव्वइ मेहावी, पणीय वज्जए रस ॥ मज्जप्पमाय विरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥ ४४ ॥ तस्स पस्सह कल्लाण, अणेगसाहु पूइय ॥ विउल अत्थसजुत्त, कित्तइस्स सुणेहमे ॥ ४५ ॥ एव तु गुणप्पेही, अगुणाण च विवज्जओ ॥ तारिसो मरणतेवि, आराहेइ सवर ॥ ४६ ॥ आयरिए, आराहेइ

ऐसा दुराचार सेवने वाला साधु आचार्य का आराधन नहीं करता है वैसे ही साधु का भी आराधन नहीं करता है उस को मदिरा पान करने वाला जानकर उस की गृहस्थ भी निंदा करते हैं ॥ ४२ ॥ ऐसा दुगुण को धारन करने वाला व गुणों का त्याग करने वाला मरणके अंतमें भी संवर का आराधना नहीं कर सकता है ॥ ४३ ॥ मैं तपस्वी हूं ऐसे अभिमान से रहित तपस्वी तपश्चर्या करे, स्निग्ध रस का त्याग कर, और मद्यपान से तथा प्रमाद से निवर्ते ॥४४॥ अहो शिष्यों ! ऐसे साधु का कल्याण देखो मदिरा का त्याग करने वाला साधु अनेक साधु से पूजित होता है विपुल मोक्ष साधन रूप अर्थ वाला होता है इस का मैं गुणग्राम करता हूं सो सुनो ॥ ४५ ॥ इस तरह गुन देखने वाला और अवगुणों का त्याग करने वाला साधु मरणांत में संवर का आराधन करता है ॥४६॥ऐसा गुणवान साधु

समणेयावि तारिसो॥गिहत्थावि ण पुअति जेण जाणति तारिस॥४७॥तवतेणे वयतेण, रूव तेणेय जे नरे ॥ आयारभावतेणेय, कुव्वइ देव किव्विस ॥ ४८ ॥ लद्धूणवि देवत्त उववन्नो देवकिव्विसे ॥ तत्थावि से न याणाइ, किं मे किच्चा इम फल ॥ ४९ ॥ ततोवि स चइत्ताण, लब्भिही एल मूयग ॥ नरग तिरिक्ख जोणिंवा,

आचार्य व श्रमण की आराधना करता है और गृहस्थ भी मदिरापान का त्यागी जानकर पूजा करते हैं ता का चोर, वचनका चोर, रूपका चोर और आचार भाव में चोर जो होते हैं वे किल्विषी देवता होते हैं ॥४८॥ किल्विषी देवता में देवपना प्राप्त करके भी वह नहीं जान सकते हैं कि किस कृत्य के यह फल पुन मीला है ॥ ४९ ॥ वहां से चवकर बकरे होवे या गूंगे बोबडे होवे यों भव परंपराय से नरक

१ किसी साधु को दुर्बल शरीर देखकर कोई पूछे कि आप तपस्वी हैं ? तब अपना मिथ्या महिमा बढाने के लिये कहे कि साधु सदैव तपस्या करते हैं अथवा मौन रहे यह तप का चोर, २ वाक्पटुता देखकर कोई पूछे कि अमुक साधु बहुसूत्री सुने हैं सो क्या आप ही हैं ? उन को उक्त प्रकार उत्तर देवे अथवा मौन रहे ३ अच्छा रूप देख कर कोई पूछे कि गृहवास त्याग कर अमुक राजपुत्र ने दीक्षा ली सुनी है सो क्या आप हो? उत्तर पूर्वोक्त प्रकार देवे अथवा मौन रहे ४ कोई बाह्य क्रिया की विशुद्धि देखकर पूछे कि अमुक आचार्य के शिष्य शुद्धाचारी सुने हैं सो क्या आप हैं ? उत्तर पूर्वोक्त प्रकार देवे अथवा मौन रहे इन पांच प्रकार के साधु को चोर कहे हैं

बोहा जत्थ सुदुल्लहा ॥ ५० ॥ एयं च दोस दट्ठुण, णायपुत्तेण भासियं ॥ अणु–मायंपि मेहावी, मायामोसं विवज्जए ॥ ५१ ॥ सिक्खिऊण भिक्खेसणसोहिं, संजयाण बुद्धाण सगासे ॥ तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिंदिए, तिव्व लज्ज गुणवं विहरेज्जासि ॥ ५२ ॥ त्तिबेमि ॥ इति बीओ उद्देसो ॥ इति पिण्डेसणाणाम पंचममज्झयणं सम्मत्तं ॥ ५ ॥ * * * * * *

तिर्यंच में उत्पन्न होवे कि जहां सम्यक्त्व की प्राप्ति बहुत दुर्लभ होती है ॥ ५० ॥ ज्ञातपुत्र श्री महावीर स्वामी ने ऐसे दोषों देखकर ऐसा कहा है ऐसा जान संयमी पुरुष थोडीसी भी माया करे नहीं और मायामृषा का त्याग करे ॥ ५१ ॥ इस तरह गुणवंतादिक बहुसुत्री के पास से विनय पूर्वक भिक्षा की एषणा शुद्धि गवेषणा की विधि जानकर पांचों इन्द्रियों को समताभाव में रमता हुवा तीव्र लज्जा के गुणवाला यतना युक्त साधु विचरे ऐसा जैसे मैंने भगवान से सुना है वैसे ही तेरे से कहा है यह पांचवा पिण्डैषणा अध्ययन का दूसरा उद्देशा संपूर्ण हुवा ॥ ५ ॥ २ ॥ यह पांचवा अध्ययन समाप्त ॥ ५ ॥ *

॥ धमर्थिकाम नामकषष्ठ मध्ययनम् ॥

नाणदसणसपन्न, सजमेअ तवे रय ॥ गणिमागमसपन्न, उज्जाणम्मि समोसढ ॥ १ ॥ रायाणो रायमच्चाय, माहणा अदुव खत्तिया ॥ पुच्छति निहुयअप्पाणो, कह मे आयार गोयरो ? ॥ २ ॥ तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो ॥ सिक्खाए सुसमाउत्तो आइक्खइ वियक्खणो ॥ ३ ॥ हन्दि धम्मत्थकामाण, निग्गंथाण सुणेहमे ॥ आयारगोयर भीमं, सयलं दुरहिट्ठिय ॥ ४ ॥ नन्नत्थ एरिस वुत्त, जलोए

पांचवे अध्ययन में शुद्ध आहार ग्रहण करने का कहा जो संयमवत होते हैं वे ही शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं, इसलिये इस छठे अध्ययन में साधुओं का शुद्धाचार का वर्णन करते हैं सम्यक ज्ञान सम्यक् दर्शन सहित, सयम व तप से युक्त द्वादशांग रूप आगम के ज्ञाता और ग्राम के बाहिर उद्यान में रहे हुए आचार्य भगवान को राजा, राजा के अमात्य ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय असंभ्रांत चित्त से पृच्छा करते हैं कि अहो भगवन् ! आप का आचार (पंच महाव्रतादि) गोचर [पांच समिति आदि] क्या है ? ॥ १ २ ॥ तब वे असंभ्रांत पांचों इन्द्रियों को दमनेवाले, सब भूत को हितकारी ज्ञान व आचार की शिक्षा यों दोनों शिक्षा युक्त और मविचक्षण आचार्य उन राजा आदि को इस प्रकार उत्तर देते हैं ॥ ३ ॥ अहो राजादि पुरुषों ! तुम दत्त चित्त से धर्मार्थ के कामी निर्ग्रंथ का आचार गोचर सुनो यह आचार गोचर कम सत्वुओं के लिये बडा भयंकर है और संपूर्ण क्षुद्र जीवों के लिये बडा दुष्कर

परम दुष्कर ॥ विउलठाणभाइस्स, नमूय न भाविस्सइ ॥ ५ ॥ सखुड्डग वियत्ताण, वाहियाण च जे गुणा ॥ अखंड फुडिया कायव्वा, त सुणेह जहा तहा ॥ ६ ॥ दस अट्ठय ठाणाइ, जाइ बालोऽवरज्झई ॥ तत्थ अन्नयरे ठाण, निग्गथ ताओ भस्सई ॥ ७ ॥ वय छक्क कायछक्क अकप्पो गिहिभायण ॥ पलियक

है ॥ ४ ॥ मोक्षार्थी साधुओं का जो आचार तुम से कहा वह अन्य कपिलादिक ३६३ पाखंडी के मत में कहीं भी नहीं कहा है क्यों कि इन को ऐसा आचार पालना बडा कठिन है विपुल संयम स्थान का भजन करनेवाले साधु को जिनमत सिवाय अन्य स्थान ऐसा आचार हुवा नहीं और होगा भी नहीं ॥ ५ ॥ छोटी वयवाले से वृद्ध पर्यंत और सरोगी व निरोगी को देश व सर्व विराधना रहित जो गुण हैं व मैं जैसे के तैसे कहता हूं सो सुनो ! ॥६॥ अब वे पूर्वोक्त गुनी साधु अवगुन के त्याग से अखंडित होते हैं सो कहते हैं—वे अवगुन के स्थानक अठारह हैं कि जिन से बाल अज्ञानी अपने आत्मा को दूषित करता है उस में से किसी स्थान का सेवन करनेवाला साधुपना से भ्रष्ट होता है ॥ ७ ॥ अब इन अठारह स्थानक के नाम कहते हैं—व्रत ६—१ प्राणातिपात २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ अब्रह्मचर्य ५परिग्रह,६रात्रि भोजन इन का त्याग रूप छ काया—७पृथ्वी काया,८अप्काया ९तेउकाया १० वायु काया, ११ वनस्पतिकाया, १२ त्रस काया, ये छ काया १३ अकल्पनीक वस्तु, १४ गृहस्थ का भाजन,

निसज्जाय, सिणाण मोहवज्जण ॥ ८ ॥ तत्थिम पढम ठाण, महावीरेण देसिय ॥
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु सजमो ॥ ९ ॥ जावति लोए पाणा, तसा अदुव
थावरा ॥ ते जाण मजाणवा नहणे नो वि घायए ॥ १० ॥ सव्वजीवा वि इच्छति,
जीविउ न मरिज्जिउ ॥ तम्हा पाणिवह घोर, निग्गथा वज्जयति ण ॥ ११ ॥ अप्पा
णट्ठा परट्ठावा, कोहावा जइवा भया॥हिंसग न मुस बूया, नो विअन्न वयावए ॥१२॥

१२ पर्यंकादि आसन, १६ गृहस्थ के घर बैठने का १७ स्नान और १८ शोभा इन अठारह स्थानक का त्याग करे ॥ ८ ॥ प्रथम स्थान प्राणातिपातका त्याग रूप कहते हैं इन अठारह स्थान में से प्रथम स्थान श्री महावीर स्वामीने इस प्रकार कहा है अहिंसा सुख देनेवाली देखी है, इस लिये सब प्राणी मात्र में दया रखना ॥ ९ ॥ इस लोक में जितने त्रस व स्थावर प्राणी हैं उन को जानते व अजानते घात करे नहीं और अन्य से घात करावे भी नहीं, उपलक्षण से करते को अच्छा भी जाने नहीं ॥१०॥ सब जीव जीना चाहते हैं परन्तु मरना कोई भी नहीं चाहते हैं इसलिये ऐसा घोर प्राणिवधका निर्ग्रंथ त्याग करते हैं, यह प्रथम महाव्रत हुवा ॥११॥ दूसरा स्थान मृषावाद के त्याग रूप कहते हैं—स्वतः के लिये, अन्य के लिये क्रोध से अथवा भय से हिंसा होवे वैसा मृषा बोले नहीं अन्य से मृषा बोलावे नहीं और बोलनेवाले को भी अच्छा जाने

मुसावाओ य लोगमि, सव्व साहुहि गरहिओ ॥ अविस्सासोय भूयाण, तम्हा मोस विवज्जए ॥ १३ ॥ चित्तमत मचित्तवा, अप्पवा जइवा बहुं ॥ दंत सोहण मित्तपि, उग्गहंसि अजाइया ॥१४॥ त अप्पणा न गिण्हति, नो वि गिण्हावए पर ॥ अन्नवा गिण्हमाणपि, नाणुजाणाति सजया ॥ १५ ॥ अबभचरिय घोर, पमाय दुरहिट्ठिय ॥ नायरति मुणी लोए, भेयाययणवज्जिओ ॥ १६ ॥ मूलमेय महम्मस्स, महा

नहीं ॥ १२ ॥ सब साधु पुरुषोंने इस लोक में मृषावाद की गर्हा [निंदा] की है मृषा बोलनेवाला भूतों का अविश्वासी होता है, इस लिये मृषा का त्याग करे यह दूसरा महाव्रत हुवा ॥ १३ ॥ अब तीसरा स्थान चोरी त्याग रूप कहते हैं अदत्तादान के त्यागी निर्ग्रंथ सचित्त अथवा अचित्त, थोडा अथवा बहुत यावत् दंत शोधन का तृणमात्र को भी बिना आज्ञा लिये लेवे नहीं ॥ १४ ॥ ऐसा अदत्तादान स्वयं ग्रहण करे नहीं अन्य से ग्रहण करावे नहीं और ग्रहण करनेवाले को अच्छा जाने नहीं यह तीसरा महाव्रत हुवा ॥ १५ ॥ अब चौथा स्थान अब्रह्मचर्य रूप कहते हैं-चारित्र भेद के स्थानक को वमनवाला सारभाविचार से भयभीत मुनि इस लोक में दुराराध्य, घोरी व प्रमाद का स्थान ऐसा अब्रह्मचर्य का आचरन करे नहीं ॥ १६ ॥ यह अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है और महा अधर्म की उत्पत्ति का

दोस समुस्सय ॥ तम्हा मेहुणससग्ग, निग्गथा वज्जयति ण ॥ १७ ॥ विडमुब्भे इमं लोण, तिह्ल सप्पि च फाणिय॥न ते सन्निहि मिच्छति,नायपुत्त वओरया॥१८॥ लोभस्सेसणुफासे, मन्ने अन्नयरामवि ॥ जे सिया सन्निहिकामे, गिही पव्वइए न से ॥ १९ ॥ जपि वत्थ व पायवा, कबल पायपुच्छग ॥ तपि सजमलज्जट्ठा, धारति परिहरातिय ॥ २० ॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नायपुत्तेण ताइणा ॥ मुच्छा परिग्गहो

स्थानक है,इस से निर्ग्रंथ मैथुन के ससर्ग का त्याग करते हैं॥१७॥अब पंचमा स्थान परिग्रह त्याग रूप कहते हैं— जो ज्ञात पुत्र श्री महावीर स्वामी के उपदिष्ट व्रत में रत हैं वे बिडल्वण सो गोमूत्रादिक स पक्वलवण और उद्भिज लवण, तैल, घृत और गुड वगैरह वस्तु का सचय अपनी पास रात्रि को रखने की इच्छा करे नहीं ॥ १८ ॥ इस तरह सन्निधि (संचय) करना सो लोभ का अनुभव है अर्थात् इस से लोभ की वृद्धि होती है इस से मैं मानता हूं कि जो कोई साधु किंचिन्मात्र भी सचय करता है वह गृहस्थ है परंतु दीक्षित नहीं है ॥ १९ ॥ यहां कोई शका करे कि साधु के पास वस्त्र पात्रादि जो हैं वे भी परिग्रह रूप क्या है ? सो उस का उत्तर देते हैं कि जो कुच्छ वस्त्र, पात्र, कंबल व रजोहरण रखते हैं वह सब सयम का निर्वाह के लिये रखते हैं और भोगते हैं ॥ २० ॥ ज्ञातपुत्र श्री महावीर स्वामीने इन

वुत्तो इअवुत्त महेसिणा ॥ २१ ॥ सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खण परिग्गहे ॥
अवि अप्पणोवि देहंमि, नायरंति ममाइयं ॥ २२ ॥ अहो निच्च तवोकम्म सव्व
बुद्धेहिं वण्णियं ॥ जाय लज्जासमा वित्ति, एगभत्तं च भोयणं ॥ २३ ॥ संतिमे
सुहमा पाणा तसा अदुव थावरा ॥ जाइं राओअ पासंतो, कह मेसणियंचरे ॥२४॥
उदउल्लं बियससत्तं पाणानिवडिया महिं ॥ दिआ ताइं विवज्जेज्जा राओ तत्थ

पाश्चादक धर्मोपाधिको को परिग्रह नहीं कहा है परंतु महर्षियोंने मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा है ॥२१॥ वस्तु अर्थात् क्षेत्रकाल के योग्य धर्मोपाधि रखने वाले बुद्ध तत्त्वज्ञ सर्व स्थान वस्त्रादि उपाधिसे षट्जीवनिकाय के संरक्षण के लिये मात्र रखते है उस में और अपनी काया में भी ममत्व धारन करे नहीं ॥ २२ ॥ अब छठा रात्रि भोजन त्यागका स्थानक कहते हैं—अहो विद्वान पुरुषों ने साधु को सदैव तपस्वी कहे हैं संयम की रक्षा के लिये वे एक भक्त भोजन करते हैं अर्थात् रात्रि भोजन नहीं करते ॥ २३ ॥ त्रस और स्थावर के सूक्ष्म प्राणियो रहे हुवे हैं कि जो रात्रि में नहीं दीखते है इस तरह रात्रि मे उन को नहीं देखता हुवा कैसे एषणा शुद्ध कर सके ॥ २४ ॥ सचित पानी वाली व सचित बीज वाली पृथ्वी होवे और उस पर सूक्ष्म प्राणियों रहे हुवे होवे तो उन को दिन को तो वर्जे परंतु रात्रिको उन की रक्षा

कहचरे ॥ २५ ॥ एयच दोस दट्ठूण, नायपुत्तेण भासिय ॥ सव्वाहार न भुञ्जाति, निग्गथा राइभोयण ॥ २६ ॥ पुढविकाय न हिंसाति, मणसा वयसा कायसा ॥ तिविहेण करणजोएण संजया सुसमाहिया ॥ २७ ॥ पुढविकाय विहिंसतो, हिंसइओ तयस्सिए ॥ तसेय विविहे पाणे, चक्खुसेय अचक्खुसे ॥२८॥ तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइ वड्ढण ॥ पुढविकायसमारम, जावज्जीवाए वज्जए ॥२९॥ आउकाय न हिंसति, मणसा वयसा कायसा ॥ तिविहेण करणजोएण, सजया

किस प्रकार कर सके ॥२५॥ ज्ञातपुत्र श्री महावीर ने ऐसे दोष देखकर कहा है कि निर्ग्रंथको रात्रि में सब प्रकार के अशनादि आहार करना नहीं यह छव्रतका स्वरूप हुवा ॥२६॥ अब छे काया में से पृथ्वी काय के रक्षण का सातवा स्थानक कहते हैं-सुसमाधिवंत संयति तीन करन तीन योगसे अर्थात् मन वचन कायासे पृथ्वी कायाकी हिंसा करें नहीं अन्य से करावे नहीं और करने वाले को अच्छा जाने नहीं ॥ २७ ॥ पृथ्वी काया की हिंसा करते हुवे उस के आश्रित् दीखसके व नहीं दीखसके वैसे त्रस स्थावर विविध प्रकार के प्राणियों की हिंसा होती है ॥२८॥ इसलिये ऐसे दोषो को दुर्गति बढानेवाला जानकर पृथ्वी काया के समारंभ का जावजीव पर्यंत त्याग कर यह पृथ्वीकाया का रक्षण कहा ॥ २९ ॥ अब अपकाया के रक्षण का आठवा स्थान कहते हैं सुसमाधिवंत संयति तीन करण तीन योग से अर्थात् मन वचन व काया से अपकाया की

सुसमाहिया ॥३०॥ आउकाय विहिंसतो, हिंसईउ तयस्सिए ॥ तसेय विविहे पाणे, चक्खुसेय अचक्खुसे ॥ ३१ ॥ तम्हा एय वियाणित्ता दोस दुग्गइ वड्ढण ॥ आउ कायसमारंभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥ ३२ ॥ जायतेय न इच्छंति, पावग जलइ त्तए ॥ तिक्खमन्नयर सत्थं सव्वओवि दुरासय ॥ ३३ ॥ पाईण पडीण वावि, उड्ढं अणुदिसामवि ॥ अहे दाहिणओ वा वि, दहे उत्तरओविय ॥ ३४ ॥ भूयाण मेसमा घाओ, हव्ववाहो न ससओ ॥ त पइवपयावट्ठा, संजया किंचिनारभे ॥ ३५ ॥

हिंसा करे नहीं अन्य से करावे नहीं और करने वाले को अच्छा जाने नहीं ॥ ३० ॥ अप्काया की हिंसा करते हुवे उस के आश्रित रहे दीखसके व नहीं दीखसके वैसे त्रस स्थावर विविध प्रकार के प्राणी की हिंसा होती है ॥ ३१ ॥ इसलिये ऐसे दोष को दुर्गति बढाने वाला जानकर अप्काया के समारंभ का जावजीव पर्यंत त्याग करे ॥३२॥ अब नववा तेउकाया की रक्षण का स्थान कहते हैं साधु अग्नि को प्रज्वलित करने की इच्छे नहीं क्यों की यह पापकारी तीक्ष्ण सब तरफ धार वाला शस्त्र है और सर्वथा प्रकार से उस का आश्रय करना दुष्कर है ॥ ३३ ॥ पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण यह चार दिशा, चार विदिशा, ऊर्ध्व व अधो यों दशों दिशा में अग्नि सब को जलाती है ॥ ३४ ॥ अग्नि प्राणीमात्र का घात करने वाली है इस में किसी प्रकार का संशय नहीं है इसलिये संयती दीपक अथवा तापने के लिये अग्नि

तम्हा एय वियाणित्ता, दोस दुग्गइवड्ढण ॥ अगणिकायसमारम, जावज्जीवाए वज्जए ॥ ३५ ॥ अनिलस्स समारम बुद्धामन्नति तारिस ॥ सावज्जबहुल चेय, नय ताईहि सेविय ॥ ३७ ॥ तालियंटेण पत्तेण, साहाविहुयणेणवा ॥ न ते विईओ मिच्छति, वेयावेऊणवा पर ॥ ३८ ॥ जपि वत्थ वपायवा, कम्बल पायपुच्छण ॥ नते वायुमुइराति जय परिहरातिय ॥ ३९ ॥ तम्हा एय वियाणित्त, दोस दुग्गइवड्ढण ॥ वाउकाय समारभ, जावज्जीवाए वज्जए ॥ ४० ॥ वणस्सइ ,

काया का किंचित् मात्र भी आरम करे नहीं ॥ ३० ॥ इसलिये इस दोष को दुर्गति बढाने वाला मानकर तेउकाया के आरंभ का जावजीव पर्यंत त्याग करे॥३६॥ अब दसवा साधु के रक्षण का स्थान कहते हैं-सावद्य की बहुलता वाला वायुकाया का आरंभ को भी पंडित पुरुषों अग्नि काया के आरम जैसा मानते हैं इस से इस का षट्काया क रक्षक साधु सेवन करे नहीं ॥ ३७ ॥ ताल्मृत के वींजने से पत्र से, अथवा शाखा को हिलाकर साधु स्वयं पवन करे नहीं वैसे ही अन्य के पास से पवन करावे नहीं और करते को भी अच्छा जाने नहीं ॥ ३८ ॥ अपने पास रहे हुवे वस्त्र पात्र, कम्बल व रजोहरण से वायु की उदीरण करे नहीं परतु यत्ना से उन को अपने पास रखे ॥ ३९ ॥ इसलिये इस दोषों को दुर्गति बढाने वाला मानकर वायुकाया का समारंभ का जावजीव पर्यंत त्याग करे ॥ ४० ॥ अब अग्यारवा वनस्पति

वज्जयति ट्ठियप्पाणो, निग्गथा धम्मजीविणो ॥ ५० ॥ कसेसु कसपाएसु कुंड मोएसु वा पुणो ॥ भुंजतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सई ॥ ५१ ॥ सीओदग समारंभे, मत्तधोयणछड्डणे ॥ जाइं छण्णंति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥ ५२ ॥ पच्छा कम्म पुरकम्म, सिया तत्थ न कप्पइ ॥ एयमट्ठं न भुंजंति, निग्गथा गिहि-भायणे ॥ ५३ ॥ आसंदीपलियंकेसु, मंचमासालएसुवा ॥ अणायरियमज्जाण,

आत्मावाले व धर्म से आजीविका करनेवाले निर्ग्रंथ पूर्वोक्त मोल लाया हुवा उद्देशिक, व सुख साया हुवा वगैरह दोष युक्त आहार पानी का त्याग करे ॥५०॥ अब चौदहवा गृहस्थ पात्र का स्थानक कहते हैं—कांसी आदि धातु के भाजन, कांसी कचरी आदि, चौडा मुखवाले कुंडा तपेला वगैरह में भोजन करनेवाले साधु आचार से भ्रष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥ गृहस्थ के भाजन में जीमने से उस का पात्र धोना पडे उस से सचित्त पानी का समारंभ होवे प्राणभूतों का छेदन होवे और श्री तीर्थंकर भगवानने उस में असंयम देखा है ॥ ५२ ॥ गृहस्थ के भाजन में भोजन करना साधु को नहीं कल्पता है क्यों कि इस में पश्चात् कर्म व पुरा कर्म यों दोनों प्रकार के दोष लगते हैं इस लिये निग्रंथ गृहस्थ के भाजन में भोजन नहीं करते हैं ॥५३॥ अब पन्नरहवा पल्यंकादि पर बैठने का स्थानक कहते हैं—निवार का बना हुवा पलंग सन की दोरी का बना हुवा माचा, बेंत पट्टी से बुना हुवा पीछे से टेकावाला कुरसी आदि सिंहासन वगैरह बैठने सोने के आसन पर बैठने व शयनकरने का साधु का आचार

आसइत्तु सइत्तुवा, ॥ ५४ ॥ नासदी पलियकेसु, न निसिज्जा नपीढए ॥ निग्गंथा पडिलेहाए,बुद्धवुत्त महिट्ठगा॥५५॥ गंभीरविजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥ आसदी पलियकोय, एयमट्ठ विवज्जिअ ॥ ५६ ॥ गोयरग्ग पविट्ठस्स,निसिज्जा जस्स कप्पइ ॥ इमेरिस मणायार, आवज्जइ अबोहिय ॥ ५७ ॥ विवत्ती बंभचेरस्स, पाणाणं च वहेवहो ॥ वणीमग पडिग्घाओ, पडिकोहो अगाहिण ॥५८॥ अगुत्ती बंभचेरस्स

नहीं है ॥ ५४ ॥ तीर्थंकर की आज्ञा पालनेवाले निर्ग्रंथ पलंग व मांचा प्रमुख पर नहीं बैठते हैं क्यों कि उन में जीवों की प्रतिलेखना नहीं हो सकती है ॥ ५५ ॥ पूर्वोक्त पलंग वगैरह में बराबर प्रकाश नहीं होने से प्राणी जीव बराबर नहीं दीखते हैं इस लिये इन पलंग प्रमुख पर बैठने का त्याग किया है ॥ ५६ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु गृहस्थ के यहां बैठता है उन को निम्नोक्त अनाचार और बोधि बीज रहित मिथ्यात्व प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ जैसे—ब्रह्मचर्य का नाश होता है, स्त्री आदि के अनुरागी बन उन के लिये नवीन भक्त पान बनाकर प्राणियों का घात करे इस से उन के संयम का वध होवे भिक्षुक आते हुवे डरे और गृहस्थ को भी क्रोध आ जावे ॥ ५८ ॥ ब्रह्मचर्य की अगुप्ति अर्थात् नाश होवे तथा स्त्री आदि का देख साधु को ब्रह्मचर्य पालने में शंका होवे या गृहस्थ को भी शंका होवे कि यह ब्रह्मचर्य पालते हैं या नहीं, इस से गृहस्थ के यहां बैठने को कुशील बढानेवाला जानकर

वज्जयंति ट्ठियप्पाणो निग्गथा धम्मजीविणो ॥ ५० ॥ कंसेसु कंसपाएसु, कुंड मोएसु वा पुणो ॥ भुंजतो असणपाणाइं, आयारा परिभस्सई ॥ ५१ ॥ सीओदग समारंभे, मत्तधोयणछड्डणे ॥ जाइं छण्णाति भूयाइं, दिट्ठो तत्थ असंजमो ॥ ५२ ॥ पच्छा कम्म पुरकम्म, सिया तत्थ न कप्पइ ॥ एयमट्ठं न भुंजति, निग्गथा गिहि-भायणे ॥ ५३ ॥ आसंदीपलियंकेसु, मंचमासालएसुवा ॥ अणायरियमज्जाण,

आत्मावाले व धर्म से आजीविका करनेवाले निर्ग्रंथ पूर्वोक्त मोल लाया हुआ उद्देशिक, स मुख लाया हुआ वगैरह दोष युक्त आहार पानी का त्याग करे ॥५०॥ अथ चौदहवा गृहस्थ पात्र का स्थानक कहते हैं—कांसी आदि धातु के भाजन, पाली कथरी आदि, चौडा मुखवाले कुंडा तपेला वगैरह में भोजन करनेवाले साधु आचार से भ्रष्ट होते हैं ॥ ५१ ॥ गृहस्थ के भाजन में जीमन से उस का पात्र धोना पडे उस से सचित्त पानी का समारंभ हाव प्राणभूतों का हनन होवे और श्री तीर्थंकर भगवानने उस में असंयम देखा है ॥ ५२ ॥ गृहस्थ के भाजन में भोजन करना साधु को नहीं कल्पता है क्यों कि इस में पश्चात् कर्म व पूरा कर्म यों दोनों प्रकार के दोष लगते हैं इस लिये निर्ग्रंथ गृहस्थ के भाजन में भोजन नहीं करते हैं॥५३॥ अथ पन्दरहवा पल्यंगादि पर बैठने का स्थानक कहते हैं—निवार का बना हुआ पलंग सन की दोरी का बना हुआ माचा, बेंत पत्ती से बुना हुआ पीछे से टेकेवाला कुरसी आदि सिंहासन वगैरह बैठने सोने के आसन पर बैठने व शयकरने का साधु का आचार

आसइत्तु सइत्तुना, ॥ ५४ ॥ नासदी पलियकेसु, न निसिज्जा नपीढए ॥ निग्गथा पडिलेहाए, बुद्धवुच महिट्ठगा॥५५॥ गभीरविजया एए, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥ आसदी पलियकोय, एयमट्ठ विवज्जिअ ॥ ५६ ॥ गोयरग्ग पविट्ठस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ॥ इमेरिस मणायार, आवज्जइ अबोहिय ॥ ५७ ॥ विवत्ती बंभचेरस्स, पाणाणं च वहेवहो ॥ वणीमग पडिग्घाओ, पडिकोहो अगारिण ॥५८॥ अगुत्ती बभचेरस्स

नहीं है ॥ ५४ ॥ तीर्थंकर की आज्ञा पालनेवाले निर्ग्रंथ पलंग व मांचा प्रमुख पर नहीं बैठते हैं क्यों कि उन में जीवों की प्रतिलेखना नहीं हो सकती है ॥ ५५ ॥ पूर्वोक्त पलंग वगैरह में बराबर प्रकाश नहीं होने से प्राणी जीव बराबर नहीं दीखते हैं इस लिये इन पलंग प्रमुख पर बैठने का त्याग किया है ॥ ५६ ॥ गोचरी के लिये गया हुवा साधु गृहस्थ के यहां बैठता है उन को निम्नोक्त अनाचार और बोधि बीज रहित मिथ्यात्व प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ जैसे—ब्रह्मचर्य का नाश होता है, स्त्री आदि के अनुरागी बन उन के लिये नवीन भक्त पान बनाकर प्राणियों का घात करे इस से उन के सयम का वध होवे भिक्षुक आते हुवे डरे और गृहस्थ को भी क्रोध आ जावे ॥ ५८ ॥ ब्रह्मचर्य की अगुप्ति अर्थात् नाश होवे तथा स्त्री आदि का देख साधु को ब्रह्मचर्य पालने में शंका होवे या गृहस्थ को भी शंका होवे कि यह ब्रह्मचर्य पालते हैं या नहीं, इस से गृहस्थ के यहां बैठने को कुशील बढानेवाला जानकर

इत्थीओवावि सकणं ॥ कुसलि वञ्जणठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥ ५९ ॥ तिण्हमन्नयरा गस्स, निसिज्जा जस्स कप्पई ॥ जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणा ॥ ६० ॥ वाहिआ वा अरोगी वा, सिणाण जोउ पत्थए ॥ वुक्कंतो होइ आयारा, जढो हवइ सजमो ॥ ६१ ॥ संति मे सुहुमा पाणा, घसासुभिलगासुय ॥ जेअभिक्खू सिणायंतो, वियडेणुप्पिलावए ॥ ६२ ॥ तम्हा ते न सिणायंति, सीएण उसिणेणवा ॥ जाव ज्जीवं वय घोर, असिणाण महिट्ठगा ॥ ६३ ॥ सिणाणं अदुवा कक्कं, लोद्धं पउम

दूर से ही उस का त्याग करे ॥ ५९ ॥ अब इस में जो आगार है सो कहते हैं—वृद्धावस्था से जर्जरित देहवाला व्याधिवाला अथवा तपस्वी; इन तीन में से कोई कारणवाला गृहस्थ के यहां बैठे तो दोष नहीं लगे ॥ ६० ॥ अब सतरहवा स्थानक स्नान का कहते हैं—रोगी अथवा निरोगी जो कोइ साधु स्नान की इच्छा करता है उस का आचार व संयम नष्ट होता है ॥ ६१ ॥ क्षार भूमि अथवा फटी हुई जमीन में जो जीव रहे हैं उन जीवों की स्नान करनेवाला साधु विराधना करता है क्यों कि स्नानकरने से पानी के साथ वे जीव बह जाते हैं ॥६२॥ इस लिये शीत अथवा उष्ण पानी से भी साधु को स्नान करना नहीं कल्पता है, जो साधु जावजीव पर्यंत अस्नान रूप घोर व्रत ग्रहण करते हैं ॥ ६३ ॥ स्नान, अथवा चंदनादि,

माणिय ॥ गायस्सुव्वट्टणट्ठाए, नायरंति कयाइवि ॥ ६४ ॥ नगिणस्स वा वि मुंडस्स, दीहरोमनहंसिणो ॥ मेहुणा उवसंतस्स, किं विभूसाए कारियं ॥ ६५ ॥ विभूसा वत्तिय भिक्खू, कम्म बधइ चिक्कण ॥ संसार सायरे घोरे, जेण पडइ दुरुत्तरे ॥ ६६ ॥ विभूसावत्तिय चेय, बुद्धा मन्नंति तारिस ॥ सावज्ज बहुलं चेय, नेय ताईहिं सेविय ॥ ६७ ॥ खवेंति अप्पाणममोहदंसिणो, तवेरया संजम अज्जवेगुणे ॥ धूणति

लोध्र कुंकुम केशर वगैरह को गात्र का उद्वर्तन (विलेपन) के लिये कदापि आचरन करे नहीं ॥ ६४ ॥ अब अठारहवा शोभा त्याग का स्थानक कहते हैं— प्रमाणोपेत वस्त्र वाले अथवा नग्न जिन कल्पी ऐसे द्रव्य भाव से मुण्डित, लम्बे केश व नख वाले और मैथुन से शांत बने हुवे साधु को विभूषा करके क्या करना है ? ॥ ६५ ॥ विभूषा वाला साधु चीकने कर्म का बंध करता है और दुस्तर घोर संसार समुद्र में पडता है ॥ ६६ ॥ बुद्ध पुरुषों विभूषा संबंधी आभूषण के संकल्प वाला चित्त को रौद्र कर्म बंधने हेतु भूत मानते हैं यह सावद्य दोषों वाला कर्म है इसलिये संसार के दुःखी जीवों का रक्षण करने वाले साधु पुरुषोंने इस का सेवन नहीं किया है ॥ ६७ ॥ उपसंहार—मोह रहित यथार्थपने वस्तु स्वरूप देखने वाले साधु आत्मा का मोह खपाते हैं अर्थात् रागद्वेष का क्षय करते हैं, संयम व ऋजुतादिगुण वाले व तप में रक्त साधु पूर्व संचित पाप कर्म को दूर करते हैं

इत्थीओवावि सकणं ॥ कुसील वड्ढणठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥ ५९ ॥ तिण्हमन्नयरा गस्स, निसिज्जा जस्स कप्पई ॥ जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो ॥ ६० ॥ वाहिओ वा अरोगी वा, सिणाणं जोउ पत्थए ॥ वुक्कंतो होइ आयारो, जढो हवइ संजमो ॥ ६१ ॥ संति मे सुहुमा पाणा, घसासु भिलगासुय ॥ जेअभिक्खू सिणायंतो, वियडेणुप्पिलावए ॥ ६२ ॥ तम्हा ते न सिणायंति सीएण उसिणेणवा ॥ जाव जीवं वयं घोरं, असिणाण महिट्ठगा ॥ ६३ ॥ सिणाणं अदुवा कक्कं, लोद्धं पउम

दूर से ही इस का त्याग करे ॥ ५९ ॥ अब इस में जो आगार है सो कहते हैं—वृद्धावस्था से जर्जरित देहवाला व्याधिवाला अथवा तपस्वी, इन तीन में से कोई कारणवाला गृहस्थ के यहां बैठे तो दोष नहीं लगे ॥ ६० ॥ अब सतरहवा स्थानक स्नान का कहते हैं—रोगी अथवा निरोगी जो कोइ साधु स्नान की इच्छा करता है उस का आचार व संयम नष्ट होता है ॥ ६१ ॥ क्षार भूमि अथवा फटी हुई जमीन में जो जीव रहे हैं उन जीवों की स्नान करनेवाला साधु विराधना करता है क्यों कि स्नान करने से पानी के साथ वे जीव बह जाते हैं ॥६२॥ इस लिये शीत अथवा उष्ण पानी से भी साधु को स्नान करना नहीं कल्पता है, यों साधु जावजीव पर्यंत अस्नान रूप घोर व्रत ग्रहण करते हैं ॥ ६३ ॥ स्नान, अथवा चंदनादि,

॥, परिसस्वाय पण्णव ॥ दोण्ह तु विणय सिक्खे, दो न भासिज्ज
गाय सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसाय जा मोसा ॥ जाय बुद्धेहि
नेज्ज पण्णत्र ॥ २ ॥ असच्चमोस सच्चंच, अणवज्ज मकक्कस ॥
, गिर भासेज्ज पण्णत्र ॥ ३ ॥ एयच अट्ठ मन्नवा, जतु नामेइ

ार्थे कामी पुरुष को उपदेश दिया है उपदेश करने में भाषा का विचार रखना
य इस अध्ययन में भाषा का कथन करते हैं प्रज्ञावानें साधु सत्य भाषा, असत्य भाषा मीश्र भाषा
ार भाषा इन चार भाषाओं को अच्छी तरह जाने और अवसर पर सत्य व व्यवहार भाषा
प्रयोग करे परन्तु मीश्र व असत्य भाषा कदापि बोले नहीं ॥ १ ॥ सावद्य होने से बोलने योग्य नहीं
होवे वैसी सत्य भाषा सत्य मृषा और मृषा भाषा कि जिस को पण्डित लोगोंने आचरन नहीं किया है
वैसी भाषा प्रज्ञावान् बोले नहीं॥२॥ पाप व कर्कश रहित सत्य व व्यवहार भाषा असंदिग्ध संदेह रहित करने
वाली है ऐसा निश्चय करके स्पष्ट प्रज्ञावान बोले ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त सावद्य तथा कर्कश भाषा रूप बोलने का
विषय को तथा इस संबंधी अन्य विषयवाली भाषा कि जो मोक्ष को प्रतिकूल होवे वैसी सत्य मृषा

पावाइ पुरेकडाई नवाइं पावाइं न ते कराति ॥१८॥ सओवसंता अममा अकिंचणा, सविज्जविज्जाणुगया जससिणो ॥ उउप्पसन्ने विमलेव चंदिमा ॥ सिद्धिंविमाणाइ उवेंति ताइणो ॥ १९ ॥ त्तिबेमि ॥ इति धम्मत्थकाममज्झयण सम्मत्त ॥ ६ ॥ *

और नवीन पाप कर्म नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ सदैव उपशांत, ममत्व रहित, धातु मात्र परिग्रह रहित परलोकोपकारिणी व विद्या युक्त और यशस्वी साधु शरत्काल के चंद्रमा समान विमल सिद्ध गति में जाते हैं, और शेष कर्म रहगये होवे तो सौधर्मादि देवलोक में जाते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ १९ ॥ यह धमार्थकाम नाम का छठा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

॥ भाषाशुद्धिनामक सप्तम मध्ययनम् ॥

चउण्हं खलु भासाण, परिसखाय पण्णव ॥ दोण्ह तु विणय सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो ॥ १ ॥ जाय सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसाय जा मोसा ॥ जाय बुद्धेहि णाइण्णा, न त भासेज्ज पण्णव ॥ २ ॥ असच्चमोस सच्चच, अणवज्ज मकक्कस ॥ समुप्पेह मसदिद्ध, गिर भासेज्ज पण्णव ॥ ३ ॥ एयच अट्ठ मन्नवा, जतु नामेइ

छठे अध्ययन में धर्मार्थ कामी पुरुष को उपदेश दिया है उपदेश करने में भाषा का विचार रखना चाहिये, इस लिये इस अध्ययन में भाषा का कथन करते हैं प्रज्ञावाने साधु सत्य भाषा, असत्य भाषा मीश्र भाषा और व्यवहार भाषा इन चार भाषाओं को अच्छी तरह जाने और अवसर पर सत्य व व्यवहार भाषा का प्रयोग करे परन्तु मीश्र व असत्य भाषा कदापि बोले नहीं ॥ १ ॥ सावद्य होने से बोलने योग्य नहीं होवे वैसी सत्य भाषा सत्य मृषा और मृषा भाषा कि जिस का पण्डित लोगोंने आचरन नहीं किया है वैसी भाषा प्रज्ञावान् बोले नहीं॥२॥ पाप व कर्कश रहित सत्य व व्यवहार भाषा असंदिग्ध संदेह रहित करने वाली है ऐसा निश्चय करके स्पष्ट प्रज्ञावान बोले ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त सावद्य तथा कर्कश भाषा रूप बोलने का विषय को तथा इस संबंधी अन्य विपयवाली भाषा कि जो मोक्ष को प्रतिकूल होवे वैसी सत्य मृषा

सासय, स भास सच्चमोसपि, तपि धीरो विवज्जए ॥ ४ ॥ वितहपि तहामुत्तिं, ज गिरं भासए नरो ॥ तम्हा सो पुट्ठो पावेण किं पुणजो मुसवए ॥ ५ ॥ तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुग वा णे भविस्सइ, अहवाण करिस्सामि, एसोवाणं करिस्सइ ॥ ६ ॥ एवमाइओ जा भासा एसकालमि सकिया ॥ सपयाइयमट्ठेवा, तपि धीरो विवज्जए ॥ ७ ॥ अईयमि कालमि पच्चुप्पन्नमणागए ॥ ज अट्ठं तु न जाणेज्जा, एवमेय

(मिश्र) भाषा का धीर पुरुष त्याग करे ॥४॥ असत्य होने पर भी सत्य स्वरूप को प्राप्त हुई (जैसे किसी स्त्रीने पुरुष का रूप धारन किया इस से पुरुषपना को प्राप्त हुई ऐसी) भाषा जो पुरुष बोलता है वह पुरुष इस तरह बोलने से ही पाप का स्पर्श करता है तो फिर जो मृषा बोलता होवे उस का तो कहना ही क्या ? ॥ ५ ॥ ऐसी अन्य स्वरूपवाली असत्य भाषा बोलने से पाप कर्म का बन्ध होता है, इस से हम यहां से कल के दिन अवश्य जावेंगे, हम अवश्य करेंगे, हमारा अमुक कार्य अवश्य होगा, अथवा मैं यह कार्य अवश्य करूंगा अथवा तो यह पुरुष अवश्य करेंगे ऐसी भविष्यत् काल सम्बन्धी, वर्तमान काल संबंधी और अतीत काल संबंधी जो भाषा शंका युक्त होवे उस को भी साधु पुरुष वर्जे अर्थात् वैसी शंका शील भाषा बोले नहीं ॥ ६-७ ॥ अतीत काल में कोई कार्य हुवा होवे, वर्तमान काल में कोई कार्य होता होवे और भविष्य काल में कोई कार्य होनेवाला होवे उस को आप स्वयं न जानता होवे तो यह

तिनोवए ॥ ८ ॥ अईयंम्मि कालमि, पच्चुप्पन्नमणागए ॥ जत्थ संका य भवे ज तु
एवमेयति नोवए ॥ ९ ॥ अईयमि कालमि, पच्चुप्पन्न मणागए ॥ निसंकियं
भवे ज तु, एवमेयति निद्देसे ॥ १० ॥ तहेव फरुसा भासा, गुरुभूओवघाइणी ॥
सच्चावि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥ ११ ॥ तहेव काणं काणेति, पंडगं
पंडगेत्तिवा ॥ वाहियं वावि रोगित्ति तेणं चोरत्ति नोवए ॥ १२ ॥ एएणन्नेण
अट्ठेण, परोजेणुवहम्मई ॥ आयारभाव दोसन्नू, न त भासेज्ज पन्नव ॥ १३ ॥

कार्य ऐसा ही है इस प्रकार निश्चय कारक भाषा बोले नहीं ॥ ८ ॥ उक्त तीनों काल के कार्य में शंका होवे तो यह ऐसा ही है वैसा बोले नहीं ॥ ९ ॥ परंतु अतीत, वर्तमान व अनागत काल में कार्यों को जानता होवे और उस में शंका रहित होवे तो यह ऐसा है वैसा कहे ॥ १० ॥ वैसे ही कठोर व बहुत प्राणों की घात करने वाली भाषा सत्य होवे तो भी बोलना नहीं इस से पाप का आगमन होता है ॥ ११ ॥ वैसे ही काणेको रे काणा! नपुसकको रे हिजडे! व्याधि वाले को रे रोगी! और चोर को रे चोर! ऐसा बोले नहीं ॥ १२ ॥ आचारभाव समाचारी के दोषों को जानने वाला महापान साधु ऐसा भय वाली भाषा बोले नहीं कि जिस से दूसरे की घात होवे अथवा

सासय, स भास सञ्चमोसपि, तपि धीरो विवज्जए ॥ ४ ॥ वितहंपि तहामुत्तिं, ज गिर भासए नरो ॥ तम्हा सो पुट्ठो पावेण किं पुणजो मुसवए ॥ ५ ॥ तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुग वा णे भविस्सइ, अहंवाणं करिस्सामि, एसोवाणं करिस्सइ ॥ ६ ॥ एवमाइओ जा भासा एसकालमि सकिया ॥ सपयाइयमट्ठेवा, तंपि धीरो विवज्जए ॥ ७ ॥ अईयमि कालमि पच्चुप्पन्नमणागए ॥ ज अट्ठ तु न जाणेज्जा, एवमेयं

(मिश्र) भाषा का धीर पुरुष त्याग करे ॥४॥ असत्य होने पर भी सत्य स्वरूप को प्राप्त हुए (जैसे किसी स्त्रीने पुरुष का रूप धारन किया इस से पुरुषपना को प्राप्त हुए ऐसी) भाषा जो पुरुष बोलता है वह पुरुष इस तरह बोलने से ही पाप का संचय करता है तो फिर जो मृषा बोलता होवे उस का तो कहना ही क्या ! ॥ ५ ॥ ऐसी अन्य स्वरूपवाली असत्य भाषा बोलने से पाप कर्म का बंध होता है, इस से हम यहां से कल के दिन अवश्य जावेंगे, हम अवश्य करेंगे, हमारा अमुक कार्य अवश्य होगा, अथवा मैं यह काम अवश्य करूंगा अथवा तो यह पुरुष अवश्य करेंगे ऐसी भविष्यत् काल संबंधी, वर्तमान काल संबंधी और अतीत काल संबंधी जो भाषा शंका युक्त होवे उस को भी साधु पुरुष वर्जे अर्थात् ऐसी शंका शील भाषा बोले नहीं ॥ ६-७ ॥ अतीत काल में कोइ कार्य हुआ होवे, वर्तमान काल में कोई कार्य होता होवे और भविष्य काल में कोइ काम होनेवाला होवे उस को आप स्वयं न जानता होवे तो यह

पिउत्तिय ॥ माउला भाइणेअति, पुत्ते नत्तुणिय त्तिय ॥ १८ ॥ हे भो हलेत्ति अन्नेत्ति, भट्टे, सामिय गामिय ॥ होल गोल वसुलेत्ति, पुरिस नेव मालवे ॥१९॥ नामधेज्जेण ण बूया, पुरिसगोत्तेण वा पुणो ॥ जहारिह मभिगिज्झ, आलवेज्ज लवेज्जवा ॥ २० ॥ पंचिदिय पाणाण, एसइत्थि अय पुम ॥ जाव ण नविजाणेज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥ २१ ॥ तहव मणुस पसु, पक्खिवा वि सरीसिव॥थूले पमेइल वज्झ, पायमित्तियनोवए ॥२२॥ परिवूढत्तिण बूया बूया उवचियत्तिय ॥ सजाए

पुरुष से बोलने का कहते हैं—हे आर्जक ! दादा, मर्जिक, मदादा ! पिता ! काका ! हे माइ ! हे मामा ! हे भनिज ! हे पुत्र ! हे नप्तृक पोता ! इत्यादि सबध वाले वचन राग उत्पन्न होने के कारन से बोले नहीं ॥ १८ ॥ वैसे ही अरे, हो, अनेरे, हे भर्ता स्वामी ! गोमिक ! होल ! गोल वसुल ! इत्यादि भाषा पुरुष से बोले नहीं ॥ १९ परन्तु कार्य होने पर किसी पुरुष को बोलाना होवे तो उस का नाम लेकर अथवा गोत्र का नाम लेकर अथवा जिस देश में जो वचन बोलने से लघुता होवे नहीं और सुनने वाले को खराब भी लगे नहीं ऐसा अवसर योग्य वचन कारनवशात् एक बार या वारंवार बोले ॥२०॥ अब पशु आश्री कहते हैं पंचेन्द्रिय प्राणियों में यह पुरुष है या स्त्री है ऐसा जहां लग मालूम होवे नहीं वहां लग समुच्चय जाति आश्री बोले ॥ २१ ॥ वैसे ही मनुष्य पशु, पक्षी व सरीसृप का स्थूल चरबी वाला ,धि मारने योग्य या पकाने योग्य है वैसा कहे नहीं ॥ २२ ॥ परन्तु उस मनुष्य पशु, पक्षी और सरीसर्प

सहत्र होले गलेचि साणे त्ता वसुलेत्तिय ॥ दुस्सए दुहए वाति, नेव भासेज्ज पन्नव ॥ १४ ॥ अज्जिए पज्जिए वात्ति, अम्मोमाउसिअत्तिय ॥ पिउस्सिए भयणिज्जेत्ति, धूए नत्तुणिअत्तिय ॥ १५ ॥ हलेहलेत्ति अन्नेत्ति, भट्ट सामिणिगोमिणि ॥ होले गोले वसुलेति इत्थिय नेव भालवे ॥ १६ ॥ नाम धिज्जेणण चूया, इत्थीगोत्तेण वा पुणो ॥ जहारिह मभिगिज्झ आलवेज्ज लवेज्जवा ॥ १७ ॥ अज्जए पज्जएवात्ति, बप्पो चुल-

दूसरा दु:खी होवे ॥ १३ वैसे ही अरे होल-मूर्ख ! रे गोले-लम्पट ! रे कुत्ते ! रे अन्यायी ! रे भिखारी ! रे दुर्भगी ! ऐसी भाषा भगवान बोले नहीं ॥ १४ ॥ अब स्त्री आश्री कहते हैं हे आर्जके (दादी) हे प्रार्जिके (परदादी) हे अंब ! हे मासी ! हे भूआ ! हे मानजी ! हे बेटी ! हे पोती ! हे दोहिती ! इत्यादि संसारी सबंध स्त्री के साथ लगा होवे तो भी यह मोह उत्पन्न करनेवाले वचन हैं इसलिये साधु बोले नहीं ॥ १५ ॥ वैसे ही हे फल्गुनी ! हे सखी ! हे भन्य का ' ह भेध्यनी ! हे स्वामिनी ! हे गोमिनी ' हे होली मूर्खिणी ! हे गोली-छिनाल ! हे वसुल वध्या ! ऐसी तुच्छ ग्राम्य भाषा साधु बोले नहीं ॥ १६ ॥ कदापित् कार्य प्रसग से स्त्री के साथ बोलने का प्रसग होवे तो साधु उस स्त्री के नाम से वाकेफ होवे तो नाम देकर बोलावे जैसे देवदत्ता बाई अथवा तो उस के गोत्र से बोलावे और जिस देश में जैसे वचन बोलने से अपनी लघुता न होवे और सुनने वाली को खराब न लगे वैसी अवसर योग्य भाषा एक वार या वारंवार बोले ॥ १७ ॥ यह स्त्री से किस तरह बोलना व न बोलना कहा अब

पिउच्चिय ॥ माउला माइणेअति, पुत्ते नत्तुणिय च्चिय ॥ १८ ॥ हे भो हलेत्ति अन्नेत्ति, भट्टे, सामिय गामिय ॥ होल गाल वसुलेत्ति, पुरिस नेर माल्वे ॥१९॥ नागधेज्जेण ण बूया, पुरिसगोत्तेण वा पुणो ॥ जहारिह मभिगिज्झ, आलवेज्ज लवज्जवा ॥ २० ॥ पंचिंदिय पाणाण, एसइत्थि अय पुम ॥ जाव ण नविजाणेज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥ २१ ॥ तहव मणुस पसु, पक्खिवा वि सरीसिवाथूले पमेइल वज्झ, पायमित्तियनोवए ॥२२॥ परिवूढत्तिण बूया बूया उवचियाधिय ॥ सजाए

पुरुष से बोलने का कहते हैं—हे आर्जक ! दादा, प्रार्जक, पड़दादा ' पिता ! काका ' हे माइ ! ह मामा ! ह भतिग ' हे पुत्र ! हे नप्तृक पोता ! इत्यादि संबंध वाले वचन राग उत्पन्न होने के कारन से बोले नहीं ॥ १८ ॥ वैसे ही अरे, हो, अनेरे, हे भर्ता स्वामी ! गोमिक ! होल ' गोल वसुल ! इत्यादि भाषा पुरुष से बोले नहीं ॥ १९ परतु कार्य होने पर किसी पुरुष को बोलाना होवे तो उस का नाम लेकर अथवा गोत्र का नाम लेकर अथवा जिस देश में जो वचन बोलने से लघुता होवे नहीं और सुनने वाले को खराब भी लगे नहीं ऐसा अवसर योग्य वचन कारनवशात् एक वार या वारवार बोले ॥२०॥ अब पशु आश्री कहते हैं पंचेन्द्रिय प्राणियों में यह पुरुष है या स्त्री है ऐसा जहां लग मालूम होवे नहीं वह लग समुच्चय जाति आश्री बोले ॥ २१ ॥ वैसे ही मनुष्य पशु, पक्षी व सरीसृप का स्थूल, चरबी वाला वध करने योग्य या पकाने योग्य है वैसा कहे नहीं ॥ २२ ॥ परतु उस मनुष्य पशु, पक्षी और सरीसर्प

पीणिए पावि महाकाएति आलवे ॥२३॥ तहेव गाओ दुज्झाओ दम्मा गोरहगत्ति य॥ वाहिमा रहजोगित्ति, नेव भासेज्ज पन्नव ॥ २४ ॥ जुवं गवेत्तिण बूया, धेणु रसदयत्ति य ॥ रहस्से महल्लए वावि, वए संवहणेत्ति य ॥ २५ ॥ तहेव गंतु मुज्जाण पव्वयाणि वणाणि य ॥ रुक्खा महल्ल पेहाए, नेव भासेज्ज पन्नव ॥ २६ ॥ अलं पासाय खंभाण, तोरणाण गिहाणय ॥ फलिहग्गल नावाणं, अलं उदगदोणिण ॥ २७ ॥ पीढए चंगबेरेय, नंगाल मइय सिया ॥ जंतलट्ठी

के शरीर स्थूल देखकर यदि प्रयोजन होवे तो ऐसा कहे कि यह वृद्ध है, बहुत काल का है, पुष्ट है, मोटे शरीर वाला है, ऐसा बोले॥२३॥ वैसे ही महाप्राज्ञ साधु गाय को देख कर यह दोहने योग्य है, बछडे को दमन करने यह नथनी डालने योग्य है, दमन करने योग्य है रथादिक में जोतने योग्य है ऐसा नहीं बोले ॥ २४ ॥ परंतु प्रसंगवशात् बोलना पडे तो बैल को देखकर कहे कि यह युवान है गाय को देखकर कहे कि यह दूध देती हुई दिखाती है, यह बछडा छोटा है, अथवा बडा है यह रथ को चलाता है वैसा निर्दोष वचन बोले ॥ २५ ॥ ऐसे ही महाप्राज्ञ साधु उद्यान जंगल में पर्वत व वन में गये हुए बडे २ वृक्षों देखकर ऐसा बोले नहीं कि इस वृक्ष का काष्ट स्तंभ बनाने जैसा है, तोरण बनाने जैसा है, घर शाखों बनाने जैसा है, भोगल बनाने जैसा है, अर्गला बनाने जैसा है, नावा बनाने जैसा है, अथवा पानी का द्रोण बनाने जैसा है ॥ २७ ॥ वैसे ही शयन करने का पटिया, काष्टपात्र कचरोट, घर के खटिये,

व नाभीया, गडिया व अल सिया ॥ २८ ॥ आसण सयण जाणं, होज्जा वा किंपुवस्सए ॥ भूओवघाइणि भास, नेव भासिज्ज पण्णव ॥ २९ ॥ तहेव गतु मुज्जाण पव्वयाणि वणागिय ॥ रुक्खा, महल्ल पेहाए, एवं भासिज्ज पण्णवं ॥ ३० ॥ जाइमता इमे रुक्खा, दीहवट्टा महालया ॥ पयाय साला विडिमा, वए दरिसणित्तिय ॥ ३१ ॥ तहा फलाइं पक्काइ, पायखज्जाई नो वए ॥ वेलोइयाइ टालाइ, वेहिमाइत्ति नोवए ॥ ३२ ॥ असयडा इमे अबा बहुनिव्वडिमा

हल का साया समार घानी का लाट, चरखे की लाट, कोवइ कि छाट, पये-चाक की नाभी, और सोनार की भारिन बनाने जैसा है ॥ २८ ॥ वसे ही पैठने का आसन, सोने का पलंग, चढने की निस्सरनी, गृह योग्य उपकरण वगैरह बनाने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं ॥ २९ ॥ परंतु उद्यान, पर्वत व वन में गया हुवा साधु बडा वृक्ष देखकर ऐसा बोले कि यह अशोकादि वृक्ष उत्तम जातिवंत देखाता है, नालीयर के वृक्ष बहुत बडे हैं, आम्रादि वृक्ष वर्तुलाकार हैं, बडादि वृक्ष विस्तारवाले हैं, यह वृक्ष शाखा प्रतिशाखा पत्रादि से उपाचित रमणिक व देखने योग्य है ऐसी भाषा मर्मोपात बोले ॥ ३०-३१ ॥ वैसे ही आम्रादि फल पके हुए हैं, परालोविक में पकाकर खाने योग्य हैं, बहुत दिन रखने से बिगड जायेंगे इस लिये अभी ही इस को निदार कर कतली करने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं॥ ३२॥

पीणिए त्ताविं महाकाएति आलवे ॥२३॥ तहेव गाओ दुज्झाओ दम्मा गोरहगत्तिय॥ वाहिमा रहजोगित्ति, नेव भासेज्ज पन्नवं ॥२४॥ जुवं गवेत्तिण बूया, धेणु रसदयत्तिय ॥ रहस्से महल्लए वावि, वएसंवहणेत्तिय ॥२५॥ तहेव गंतु मुज्जाणं पव्वयाणि वणाणिय ॥ रुक्खा महल्ल पेहाए, नेव भासेज्ज पन्नवं ॥२६॥ अलं पासाय खंभाणं, तोरणाण गिहाणय ॥ फलिहग्गल नावाणं, अलं उदगदोणिण ॥२७॥ पीढए चंगबेरेय, नंगाले मइयं सिया ॥ जंतलट्ठी

के शरीर स्थूल देखकर यदि प्रयोजन होवे तो ऐसा कहे कि यह वृद्ध है बहुत काल का है, पुष्ट है, मोटे शरीर वाला है ऐसा बोले॥२३॥ वैसे ही प्रज्ञावान साधु गाय को देख कर यह दोहने योग्य है, बछड़े को देख कर यह नथनी डालने योग्य है, दमन करने योग्य है हलादिक में जोतने योग्य है ऐसा नहीं बोले ॥२४॥ परंतु प्रसंगवशात् बोलना पड़े तो बैल को देखकर कहे कि यह युवान है गाय को देखकर कहे कि यह दूध देती हुई दिखाती है, यह बछड़ा छोटा है, अथवा बड़ा है यह रथ को चलाता है ऐसा निर्दोष वचन बोले ॥२५॥ ऐसे ही प्रज्ञावान साधु उद्यान जंगल में पर्वत व वन में गये हुए बड़े २ वृक्षों देखकर ऐसा बोले नहीं कि इस वृक्ष का काष्ट स्तंभ बनाने जैसा है, तोरण बनाने जैसा है, घर शाखों बनाने जैसा है, भोगल बनाने जैसा है अर्गल बनाने जैसा है, नावा बनाने जैसा है, अथवा पानी का द्रोण बनाने जैसा है ॥२६॥ वैसे ही शयन करने का पटिया, काष्टपात्र-कठरोट, घर के कड़िये,

त्यासय आवगा॥३६॥सखडि सखडि बूया, पणियट्ठाति तेणग ॥ बहुसमाणि तित्थाणि,
आवगाण वियागरे ॥ ३७ ॥ तहा नईओ पुण्णाओ, कायतिज्जाचि नो वए ॥
नावाहिं तारिमाओति पाणिपिज्जचि नो वए ॥३८॥ बहुवाहडा अगाहा, बहुसलि
लुप्पिलोदगा ॥ बहुवित्थडोदगायावि एवं भासेज्ज पण्णव ॥ ३९ ॥ तहेव सावज्जं

चाहिए तैसे ही चोर को देखकर ऐसा नहीं कहे कि यह बड़ा चोर है, इसने बहुत चोरियों की है इसलिये
यह मारने योग्य है वैसे ही नदी को देखकर ऐसा नहीं कहे कि इस के दोनों किनारे बहुत अच्छे हैं
इस पर से नदी में कुदने का अच्छा है, इस नदी का तीरना सहज है इस में जलक्रीडा करना अच्छा
दीखता है पथिक जनों को भी गमनागमन करने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं ॥ ३६ ॥
परन्तु प्रसगोपात बोलना पड़े तो ऐसा कहे कि अमुकने जेमन किया है, धनादि के लालुच चोर चोरी
करते हैं, इस नदी के रास्ते से पथिक जन उतरते दीखते हैं बहुत जीव पानी पीते हैं गाम के लोक
यहां पानी भरने के लिये आते हैं ऐसी निरवद्य भाषा बोले ॥३७॥ वैसे ही पानी से परिपूर्ण नदी देखकर यों
कहे नहीं कि यह नदी भुजा से तीरने योग्य है नावा से तीरने योग्य है अथवा इस का पानी पीने योग्य
है॥३८॥परंतु प्रसग वशात् पानी से भरी हुई नदी को बुद्धिमान साधु ऐसा कहे कि-इस नदी में अगाध पानी भरा
हुआ है, ऊपर पानी की कल्लोलों उठ रही हैं, पानी बहुत फैला हुआ है ऐसा बोले ॥ ३९ ॥ दूसरों के

फला ॥ वग्गवहुसमूया, भूयरूवत्तित्ता पुणो ॥ ३३ ॥ तहवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइय ॥ लाइमा भज्जिमाओत्ति पिहुखज्जत्ति नो वए ॥ ३४ ॥ रूढा बहु सभूया थिरा ऊसढावित्र ॥ गब्भियाओ पसूयाओ, ससाराओत्ति आलवे ॥ ३५ ॥ तहेव सखडि नच्चा, किच्च कज्जति ना वए ॥ तेणगं वावि वज्झेति, सुति-

मयोजन होने पर ऐसा बोले कि इस आम्र वृक्ष के फल बहुत आये हैं भारभूत होकर नम्र बने हुए हैं, इस के फल बहुत लगे हैं इस के फल पके हुए कोमल अद्भुत रूपवाले हैं ऐसे ही वन में वनस्पति बहुत है यह सब सजीव है संख्यात असंख्यात व अनंत जीवों हैं यों उपदेशकी भाषा बोले॥३३॥ ऐसे ही साधु धान्य के खेतों में गया हुवा चौबीस प्रकार का धान्य उत्पन्न हुवा देखकर ऐसा न कहे कि यह पका हुवा है, इन का छेदन करना उचित है, उंबी होले पृथु आदि अग्नि प्रयोग से सेक कर खाने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं ॥३४॥ परन्तु प्रसंग होनेपर कहे कि हरी की उत्पत्ति बहुत हुइ है, अकूर बहुत हुए हैं भान्यादिक का मोर लगे हैं इन की त्वचा कठिन होने से शीतादिक उपद्रव कम होता है, खेतों में उंबी होले मुट्टे बहुत लगे हैं, इन में दाना होने का संभव है, यह सबीज बने है ऐसी निर्वद्य भाषा कारण प्रसंग बोले ॥ ३५ ॥ वैसे ही जेमन की रसोइ पक्वानादि देखकर ऐसा नहीं बोले कि इन्होंने जेमन अच्छा किया है तुमको यह जेमन करने योग्य है यह करना उचित है तुम्हारे जैसेको ऐसा जरूर करना

रयाणय आवगा॥३६॥सखडि सखडिं वूया, पणियट्ठाति तेणग ॥ बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाण वियागरे ॥ ३७ ॥ तहा नईओ पुण्णाओ, कायतिज्जाति नो वए ॥ नावाहिं तारिमाओति पाणिपिज्जति नो वए ॥३८॥ बहुवाहडा अगाहा, बहुसलि लुप्पिलोदगा ॥ वहुवित्थडोदगायावि, एवं भासेज्ज पण्णव ॥ ३९ ॥ तहेव सावज्जं

चाहिए तैसे ही चोर को देखकर ऐसा नहीं कहे कि यह बड़ा चोर है, इसने बहुत चोरियों की है इसलिये यह मारने योग्य है वैसे ही नदी को देखकर ऐसा नहीं कहे कि इस के दोनों किनारे बहुत अच्छे हैं इस पर से नदी में कुदने का अच्छा है, इस नदी का तीरना सहज है इस में जलक्रीडा करना अच्छा दीखता है पथिक जनों को भी गमनागमन करने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं ॥ ३६ ॥ परतु प्रसगोपात बोलना पड़े तो ऐसा कहे कि अमुकने जेमन किया है, धनादि के लालुच चोर चोरी करते हैं, इस नदी के रास्ते से पथिक जन उतरते दीखते हैं बहुत जीव पानी पीते हैं गाम के लोक यहां पानी भरने के लिये आते हैं ऐसी निवद्य भाषा बोले ॥३७॥ वैसे ही पानी से परिपूर्ण नदी देखकर यों कहे नहीं कि यह नदी भुजा से तीरने योग्य है नावा से तीरने योग्य है अथवा इस का पानी पीने योग्य है॥३८॥परंतु प्रसग वशात् पानी से भरी हुइ नदी को बुद्धिमान साधु ऐसा कहे कि इस नदी में अगाध पानी भरा हुआ है, ऊपर पानी की कल्लोलों उठ रही हैं, पानी बहुत फैला हुआ है ऐसा बोले ॥ ३९ ॥ दूसरों के

फला ॥ वग्गजवहुसंभूया भूयरूवत्तिवा पुणो ॥ ३३ ॥ तहवोसहिओ पक्काओ, नीलियाओ छवीइय ॥ लाइमा भज्जिमाओत्ति पिहुखज्जत्ति नो वए ॥ ३४ ॥ रूढा बहु संभूया थिरा ऊसढावि य ॥ गब्भियाओ पसूयाओ, ससाराओत्ति आलवे ॥ ३५ ॥ तहेव संखडि नच्चा, किच्चं कज्जंति नो वए ॥ तेणगं वावि वज्झेति, सुति-

प्रयोजन होने पर ऐसा बोले कि इस आम्र वन के फल बहुत आये हैं भारभूत होकर नम्र बने हुए हैं, अब के फल बहुत लगे हैं इस के फल पके हुए कोमल अद्भुत रूपवाले हैं ऐसे ही वन में वनस्पति बहुत हुइ है यह सब सजीव है, संख्यात असंख्यात व अनंत जीवों हैं यों उपदेशवाली भाषा बोले॥३३॥ वैसे ही साधु धान्य के खेतों में गया हुवा चौवीस प्रकार का धान्य उत्पन्न हुवा देखकर ऐसा न कहे कि यह पका हुवा है, इन का छेदन करना उचित है अभी होले पुख आदि अग्नि प्रयोग से सेक कर खाने योग्य है ऐसी सावद्य भाषा बोले नहीं ॥३४॥ परन्तु प्रसंग होनेपर कहे कि हरी की उत्पत्ति बहुत हुइ है, अंकूर बहुत हुए हैं, आम्रादिक का मोर लगे हैं इन की त्वचा कठिन होने से शीतादिक उपद्रव कम होता है, खेतों में कच्ची छोले भुट्टे बहुत लगे हैं, इन में दाना होने का संभव है, यह सबीज बने हैं ऐसी निर्वद्य भाषा कारण वशात् बोले ॥ ३५ ॥ वैसे ही जेमन की रसोइ पक्वानादि देखकर ऐसा नहीं बोले कि इन्होंने जेमन अच्छा किया है तुमको यह जेमन करने योग्य है यह करना उचित है तुम्हारे जैसेको ऐसा अवश्य करना

अविक्किय मवत्तव्व, अचियत्तं चेव नो वए ॥ ४३ ॥ सव्वमेयं वइस्सामि, सव्वमेय ति नो वए ॥ अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ, एव भासेज्ज पण्णव ॥ ४४ ॥ सुक्कीय वा सुविक्कीयं, आकिज्ज किज्जमेव वा ॥ इम गेण्ह इम मुच पणियं नो वियागरे ॥४५॥ अप्पग्घेवा महग्घेवा कएवा विक्कएविवा ॥ पणियट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्ज वियागरे ॥ ४६ ॥ तहेवा सजय धीरो, आसएहि करेहिवा ॥ सय चिट्ठ वयाहित्ति, नेवं

कोइ गृहस्थ साधु से वार्तालाप करे तो ऐसा बोले नहीं कि-यह वस्तु सब से उत्कृष्ट है, बहु मूल्य वाली है अन्य स्थान ऐसी वस्तु का प्राप्त होना दुर्लभ है, ऐसी दुसरी वस्तु नहीं है, बराबर साफ की हुई नहीं है, यह अवर्णनीय है इस प्रकार अप्रतीतकारी वचन बोले नहीं ॥ ४३ ॥ कोई साधु ग्रामान्तर विहार करते होवे उसे देख कोई गृहस्थ कहे कि अमुक स्थान मेरे अमुक संबंधी हैं उन को यह समाचार कहना; तब साधु को ऐसा नहीं कहना चाहिये कि मैं एसे सब समाचार कहूंगा क्यों की सब बात साधु नहीं कह सकते हैं यों विचार पूर्वक भाषा के दोषों से बचकर यथा योग्य बोले ॥ ४४ ॥ और भी यह किरीयाना तुमने खरीदा या बेचा सो अच्छा किया, यह वस्तु लेने योग्य है अथवा लेने योग्य नहीं है, इस में लाभ होगा अथवा नहीं होगा इत्यादि व्यापार संबंधी बातों साधु बोले नहीं ॥ ४५ ॥ परंतु अल्प मूल्य वाला व बहु मूल्य वाला करीयान खरीदने का या वेचने का होवे और उस संबंध में कोई साधु को पूछे तो पाप रहित निर्वद्य वचन बोले ॥ ४६ ॥ वैसे ही साधु असंयति को बैठो, आवो,

जोग परस्सट्ठाय निट्ठियं ॥ कीरमाणंति वा नच्चा, सावज्ज न लवे मुणी ॥ ४० ॥
सुकडेति सुपक्कति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे ॥ सुनिट्ठिए सुलट्ठेति, सावज्ज वज्जए मुणी
॥ ४१ ॥ पयत्तपक्केति व पक्कमालवे, पयत्तछिन्नत्ति व छिन्नमालवे॥पयत्तलट्ठेति व
कम्महेउय, पहारगाढत्ति व गाढमालवे॥४२॥सव्वुक्कसं परग्घं वा अउलं नत्थि एरिसं ॥

लिये बनाया हुवा सावद्य कार्य वैसे ही वर्तमान में कराता हुवा सावद्य कार्य को जानकर यह अच्छा किया ऐसा सावद्य वचन बोले नहीं ॥ ४० ॥ मुनि सावद्य भाषा बोले नहीं जैसे कि—अच्छा किया यह सभा कार्य, अच्छा बनाया यह अशनादि अच्छा छेदन किया यह शाकादि इस कृपण का धन चोरोंने हरन किया सो अच्छा किया, सब जीवों को दुःख देने वाला पापी मरगया सो अच्छा हुवा अच्छे बनाये अशनादिक यह कन्या रूप लावण्यता से युक्त विवाह योग्य है ऐसा सावद्य बोले नहीं (परन्तु निर्वद्य रीति से प्रयोजन होने पर बोले जैसे इसने वृद्धादिक की वैय्यावृत्य अच्छी की इस का ब्रह्मचर्य व्रत अच्छा पका, इसने मोह ममत्व का छेदन अच्छा किया, तपादिक से पाप का हरण किया सो अच्छा हुवा पंडित मृत्यु से मरा सो अच्छा हुवा, और इन की संयम क्रिया बहुत अच्छी है) ॥ ४ ॥ परंतु पके हुए पदार्थ देखकर कहे कि यह बहुत प्रयत्न से पके हुए हैं इस शाकादिक का बहुत प्रयत्न से छेदन किया है,इस कन्या का पालन [illegible] से किया है [illegible] का शृंगार कर्म बंधन करता है इसने अच्छे कर्म किये ऐसे ही इस निर्दयी ने इस को गाढ प्रहार से मारा है ऐसा कारण प्रसंग से बोले ॥ ४२॥व्यापार संबंध में

अविक्किय मवत्तव्व, अचियत्तं चेव नो वए ॥ ४३ ॥ सव्वमेयं वइस्सामि, सव्वमेय ति नो वए ॥ अणुवीइ सव्व सव्वत्थ, एव भासेज्ज पण्णव ॥ ४४ ॥ सुक्कीय वा सुविक्कीय आकिज्ज किज्जमेव वा ॥ इम गेण्ह इम मुंच, पणियं नो वियागरे ॥४५॥ अप्पग्घेवा महग्घेवा कएवा विक्कएविवा ॥ पणियट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्जं वियागरे ॥ ४६ ॥ तहेवा संजय धीरो, आसएहि करेहिवा ॥ सय चिट्ठ वयाहिति, नेव

कोइ गृहस्थ साधु से वार्तालाप करे तो ऐसा बोले नहीं कि-यह वस्तु सब से उत्कृष्ट है, बहु मूल्य वाली है अन्य स्थान ऐसी वस्तु का प्राप्त होना दुर्लभ है, ऐसी दुसरी वस्तु नहीं है, बराबर साफ की हुई नहीं है, यह अवर्णनीय है इस प्रकार अप्रतीतकारी वचन बोले नहीं ॥ ४३ ॥ कोई साधु ग्रामान्तर विहार करते होवे उसे देख कोई गृहस्थ कहे कि अमुक स्थान मेरे अमुक संबंधी हैं उन को यह समाचार कहना; तब साधु को ऐसा नहीं कहना चाहिये कि मैं एसे सब समाचार कहूंगा क्यों की सब बात साधु नहीं कह सकते हैं यों विचार पूर्वक भाषा के दोषों से बचकर यथा योग्य बोले ॥ ४४ ॥ और भी यह किरीयाना तुमने खरीदा या बेचा सो अच्छा किया, यह वस्तु लेने योग्य है अथवा लेने योग्य नहीं है, इस में लाभ होगा अथवा नहीं होगा इत्यादि व्यापार संबंधी बातों साधु बोले नहीं ॥ ४५ ॥ परंतु अल्प मूल्य वाला व बहु मूल्य वाला करीयान खरीदने का या बेचने का होवे और उस संबंध में कोई साधु को पूछे तो पाप रहित निर्वद्य वचन बोले ॥ ४६ ॥ वैसे ही साधु असंयति को बैठो, आवो,

भासेज्ज पण्णवं ॥ ४७ ॥ बहवे इमे असाहु, लोए वुच्चंति साहुणो ॥ नलवे असाहु साहुत्ति, साहुसाहुत्ति आलवे ॥४८॥ नाण दंसण संपन्नं, संजमे य तवेरयं ॥ एवंगुण समाउत्तं संजयं साहु मालवे ॥ ४९ ॥ देवाण मणुयाणंच, तिरियाणं च वुग्गहे ॥ अमुयाणं जओ होउ मा वा होउत्ति नो वए ॥ ५० ॥ वाओवुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवंतिवा ॥ कयाणुहोज्ज एयाणि, मावा होउत्ति नो वए ॥ ५१ ॥ तहेव मेहं नहं व माणवं, न देवदेवत्ति गिरं वएज्जा ॥ समुच्छिए उन्नए वा पओए, वएज्जवा

अमुक काय करो शयन करो खडे रहो जाओ, ऐसी सावद्यकारी भाषा बोले नहीं ॥ ४७ ॥ इस संसार में साधु के आचार से भ्रष्ट ऐसे बहुत असाधु पुरुष साधु कहाते हैं, तो उन असाधु को साधु कहे नहीं परन्तु साधु को ही साधु कहे ॥४८॥ ज्ञान दर्शन से संपन्न संयम व तप में रक्त, ऐसे गुन युक्त संयति को साधु कहे ॥ ४९ ॥ देव मनुष्य व तिर्यंच का विग्रह होवे तो उन में अमुक का जय होओ और अमुक का जय न होओ वैसा बोले नहीं ॥ ५० ॥ ठंडक करने वाला वायु, वर्षा, शीतोष्ण उपद्रव की शांति, सुभिक्ष, सब उपसर्ग की शांति, ये सब कब होगा, या नहीं होगा वैसा कहे नहीं ॥५१॥ बस ही मेघ, आकाश व मनुष्य को यह देव है वैसा साधु कहे नहीं, परंतु बदल देखकर यह मेघ चढा है

वुद्ध वलाहयचिति ॥ ५२ ॥ अंतलिक्खतिण बूया, गुज्झाणुचरियत्तिय ॥ रिद्धिमत नर दिस्स, रिद्धिमतत्ति आलवे ॥ ५३ ॥ तहेव सावज्जणु मोयणी गिरा, ओहारिणी जाय परोवघाइणी ॥ से कोह लोह भयहास माणवो न हासमाणोवि गिर वएज्जा ॥ ५४ ॥ सुवक्कसुद्धिं समुपेहया मुणी गिर च दुट्ठ परिवज्जए सया ॥ मिय अदुट्ठ अणुवीइ भासए सयाण मज्झे लहइ पससण ॥ ५५ ॥ भासाए दोसेय गुणेय जाणिया, तीसेय दुट्ठे परिवज्जए सया ॥ छसु सजए सामणिए सया जए, वएज्ज बुद्धे

अथवा कहा आया हुवा है अथवा यह मेघ बरसा ऐसा कहे ॥ ५२ ॥ आकाश को अंतरीक्ष अथवा गुह्यानु चरित कहे ऋद्धि वाला मनुष्य देखकर कहे कि यह मनुष्य ऋद्धि वाला दीखता है ॥ ५३ ॥ वैसे ही जो भाषा सावद्य का अनुमोदन करनेवाली होवे निश्चयकारिणी और दूसरे की घात करनेवाली होवे ऐसी भाषा साधु पुरुष क्रोध, लोभ भय व हास्य से मस्करी करता हुवा भी बोले नहीं ॥ ५४ ॥ सो मगत मुनि सुवाक्य की शुद्धि देखकर सदैव दुष्टवाणी का त्याग करे और मर्यादा युक्त अदुष्ट व रहित वाणी का विचार करके बोले इस तरह बोलने से वह साधु पुरुषों में प्रशसा पाता है ॥ ५५ ॥ छ काया में संयाति श्रमण भाव में चढते परिणामवाले और सदा उद्यमवन्त साधु इस तरह भाषा के दोष व गुण जानकर उस में दोषवाली भाषा का त्याग करे और हितकारी व मधुर भाषा

हियमाणुलोमियं ॥ ५६ ॥ परिक्खभासी सुसमाहि इन्दिए, चउकसायावगए अणिस्सिए ॥ सन्निधुणे धुममल पुरेकड, आराहए लोगमिणं तहापर,त्तिबेमि ॥५७॥

इति सुवक्कसुद्धि णामं सत्तम अज्झयणं सम्मत्त ॥ ७ ॥ * * *

बोले ॥ ५६ ॥ अब उपसंहार-साधष व निर्वद्य का विचार कर बोलनेवाला, सब इन्द्रियों में समाधिवंत, क्रोध मान माया व लोभ ऐसी चार कषाय को दूर करनेवाले द्रव्य भाव का प्रतिबंध रहित, ऐसे साधु पूर्व जन्म के संचित पाप कर्म को दूर करके इस लोक तथा परलोक से आराधन करते हैं ऐसा मैं कहता हूं ॥ ५७ ॥ यह सुवाक्य शुद्धि नामक सातवा अध्ययन संपूर्ण हुवा ॥ ७ ॥ *

॥ आचारप्रणिधि नामक अष्टम मध्ययनम् ॥

आयारप्पणिहिं लद्धु, जहा कायव्व भिक्खुणा ॥ त मे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्वि सुणेह मे ॥ १ ॥ पुढविदगअगणिमारुय, तणरुक्खसबीयगा ॥ तसाय पाणा जीवत्ति, इइ वुत्त महेसिणा ॥ २ ॥ तेसिं अच्छणजोएण, निच्च होयव्वय सिया ॥ मणसा काय वक्केण, एव भवइ सजए ॥ ३ ॥ पुढवि भित्तिं सिल लेलु, नेवभिंदे न सलिहे ॥ तिविहेण करण जोएण, सजए सुसमाहिए ॥ ४ ॥ सुद्ध पुढवि

सातवे अध्ययन में भाषासमिति का कथन किया निर्मल शुद्ध भाषा बोलने से आचार रूप निधान की प्राप्ति होती है इस लिये आठवे अध्ययन में आचार का कथन करते हैं अहो शिष्य ! साधु को आचार रूप निधान प्राप्त करके जैसा करना चाहिये वैसा मैं तुम को कहूंगा सो अनुक्रम से सुनो ॥ १ ॥ पृथ्वी काया, अपुकाया तेउकाया वायुकाया, बीज सहित तृण वृक्ष-अर्थात् वनस्पतिकाया और त्रस प्राणी ये सब जीव हैं ऐसा महर्षि श्री भगवान महावीर स्वामीने कहा है ॥ २ ॥ उन की मन वचन न काया से सदैव हिंसा नहीं करना चाहिये इस से वह सयती होता है ॥ ३ ॥ सुसमाधिवत साधु तीन करन तीन योगे से सचित्त पृथ्वी, भित्ति, शीला व लोष्ठ-ईंट आदि के टुकडे करे नहीं व सघर्षण भी करे नहीं ॥ ४ ॥ सचित्त शुद्ध पृथ्वी पर साधु बैठे नहीं वैसे ही सचित्त रजवाला आसन पर

१ मन वचन और काया ये तीन योग हैं और करना नहीं, कराना नहीं और करते को अनुमोदना नहीं ये तीन करन है

न निसीए, ससरक्खम्मिय, आसणे ॥ पमज्जित्तु निसीएज्जा, जाइत्ता जस्स उग्गहं ॥ ५ ॥ सीउदग न सेवेज्जा सिलावुट्ठं हिमाणिय ॥ उसिणोदग तत्तफासुय, पडिगाहेज्ज संजए ॥ ६ ॥ उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुच्छे न संलिहे ॥ समुप्पेह तहाभूयं, नोणं संघट्टए मुणी ॥ ७ ॥ इंगाल अगणिं अच्चिं, अलायंवा सजोइयं ॥ न उंजिज्जा न घट्टिज्जा, नोणं निव्वावए मुणी ॥८॥ तालियंटेण

भी बैठे नहीं परंतु सचित्त रज से भरे हुए पांव को रजोहरण से पुंज करके अचित्त स्थान पर आज्ञा लेकर बैठे ॥ ५ ॥ साधु सचित्त जल, गड़े तथा हिम का सेवन करे नहीं परंतु तपाया हुवा अल्प प्रासुक जल ग्रहण करे ॥ ६ ॥ यदि कदाचित् वर्षा के योग से अपनी काया पानी से भीग गई होवे तो उसे वस्त्र से पूंछे नहीं वैसे ही स्पर्श भी करे नहीं पानी से भीगा हुवा शरीर देखकर किंचित्मात्र संघट्टन करे नहीं ॥ ७ ॥ अंगार, अग्नि अग्नि के कण, और जलते काष्ठादिक को पुनि प्रज्वलित करे नहीं उस का संघट्टन करे नहीं वैसे ही उसे बुझावे भी नहीं ॥ ८ ॥ तालपत्र के पंखे से, कमल पत्रादिक

१ तत्त शब्द का अर्थ कितनेक तीन उकालका पानी ऐसा करते हैं तत्त शब्द संस्कृत तप्त शब्द से बना है जिस का तपाया हुवा ऐसा अर्थ होता है परंतु तीन ऐसा अर्थ नहीं होता है,

पत्तेण, साहा विहुणेणवा ॥ नवीइज्ज अप्पणो काय बाहिर वावि पोग्गल ॥ ९ ॥
तणरुक्ख न छिंदेज्जा फल मूल व कस्सई ॥ आमग विविह बीय, मणासा वि न
पत्थए ॥ १० ॥ गहणसु न चिट्ठेज्जा, बीएसु हरिएसुवा, उदगमि तहानिच्च,
उत्तिंग पणगेसु वा ॥ ११ ॥ तसे पाणे न हिंसेज्जा वाया अदुव कम्मुणा ॥ उवरओ
सव्वभूएसु पासिज्ज विविह जग ॥ १२॥ अट्ठ सहुमाइ पेहाए,जाइ जाणित्तु सजए॥
दयाहिगारी भूएसु आस चिट्ठ सएहिवा ॥ १३ ॥ कयराइ अट्ठसहुमाइ, जाइ

रे अथवा शाखा हिला कर मुनि अपनी काया को पवन डाले नहीं, वैसे ही बाहिर की वस्तु पर भी
प न डाले नहीं ॥ ९ ॥ मुनि तृण का छेदन करे नहीं वैसे ही किसी वृक्ष के कच्चे विविध प्रकार के
बीज, फल व मूल की मन से भी प्रार्थना करे नहीं ॥ १० ॥ वैसे ही गहन वृक्ष के कुञ्ज में, बीज व हरि
काया उदक तथा उत्तिंग नामक वनस्पति और लील फुलन पर मुनि कदापि बैठे नहीं ॥ ११ ॥ सब
प्राणियों की हिंसा का त्याग करने वाले वचन से अथवा कर्म से भी त्रस प्राणी की हिंसा करे नहीं
परंतु वैराग्य भाव से विविध प्रकार के जगत की विचित्रता देखे ॥ १२ ॥ यह स्थूल जीव की यत्ना कही
अब सूक्ष्म जीवों की यत्ना कहते हैं आठ प्रकार के सूक्ष्म जीवों को दीर्घ दृष्टि से देखकर संयति बैठे,
खड़े रहे, अथवा शयन करे इन जीवों को जाननेवाले जीव भूतों में दया के अधिकारी होते हैं ॥ १३ ॥

पुष्फिम सजए ॥ इमाई ताइ मेहावी, आइक्खेज त्रियक्खणो ॥१४॥ सिणेहं पुप्फसुहुमं च,पाणुत्तिग तहेवय ॥ पणग बीय हरियच, अडसुहुमच अट्ठमं ॥ १५ ॥ एव मेयाणि जाणित्ता,सव्व भावेण सजए ॥अप्पमत्तो जए निच्च, सव्विंदिय समाहिए ॥ १६ ॥ धुवं च पडिलेहेज्जा, जोगसा पायकंबलं ॥ सेज्ज मुच्चार भूमिं च, संथार अदुवासण ॥ १७ ॥ उच्चार पासवण, खेल सिंघाण जल्लिय ॥ फासुयं पडिलेहित्ता

अब दया का अधिकारी बननेवाले संपाति प्रश्न करते हैं कि ये आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव कौनसे हैं ? तब इन का विचक्षण मेघावी इस प्रकार उत्तर देते हैं ॥ १४ ॥ इन आठ सूक्ष्म के नाम कहते हैं १ ओस, धूअर का पानी २ वडादिक के पुष्प ३ कुंथुवादिक प्राणी, ४ कीडी आदि के नगरे ५ पांच वर्ण की लील फूल्न ६ वट पिपलादिक के बीज, ७ ग्रावादिक के अंकुर, ८ और कुंथु चिंटी प्रमुख के अंडे ये आठों ही बहुत बारिक होने से सूक्ष्म गिने गये हैं ॥ १५ ॥ सब इन्द्रियों में समाधिवंत साधु सब भाव से इन को जानकर सदैव अप्रमादि बना हुवा यत्ना पूर्वक विचरे ॥ १६ ॥ दयावंत साधु सशक्त होकर सदैव जब यथोक्रम होवे तब कंबल, शैय्या स्थानक, बैठने का आसन, संथारा और लघुनीत बडीनीत इन पांचों स्थानक की प्रति लेखना करे ॥ १७ ॥ संपाति लघुनीत, बडीनीत, श्लेष्म, नाकका मैल और शरीर

परिट्ठाविज्ज सजए ॥१८॥ पविसित्तु परागार, पाणट्ठा भोयणस्स वा॥जयं चिट्ठे मिय भासे, नय रूवेसु मणकरे ॥ १९ ॥ बहुसुणेइ कण्णेहिं, बहु अच्छीहि पिच्छइ ॥ नयदिट्ठं सुय सव्वं,भिक्खू अक्खाओ मरिहई ॥२०॥ सुय वा जइवा दिट्ठं, नलवेज्ज उवघाइय॥ नय कण उवाएण,गिहिजोग समायर ॥ २१ ॥ निट्ठाण रस निज्जुढ भद्दग पावगतिवा ॥ पुट्ठोवावि अपुट्ठोवा, लाभालाभ न निद्दिसे ॥ २२ ॥ नय

का मेल इन को फासुक भूमि देख कर परिठावे ॥ १८ दूसरे के घर में भोजन व पानी के लिये प्रवेश करके साधु यत्ना पूर्वक खड़ा रहे और मर्यादा युक्त वचन बोले परंतु नाना प्रकार के रूप में कदापि मन करे नहीं ॥ १९ ॥ साधुने बहुत काल से शुभ तथा अशुभ सुना होवे और आंखों से देखा होवे जो वह देखा हुवा या सुना हुवा वगैरह कुच्छ भी दूसरे के पास कहना साधु को उचित नहीं है ॥ २० ॥ जो कुच्छ सुना होवे व देखा होवे और उस से घात हानी होवे तो वैसी भाषा साधु बोले नहीं, और किसी प्रकार से गृहस्थ के बालक को रमाना वगैरह गृहस्थ का काय करे नहीं ॥ २१ ॥ कोइ पूछे अथवा विना पूछे भी साधु यह आहार रस युक्त है या निरस है, कल्याणकारी है या पापकारी है वैसा कहे नहीं वैसे ही लाभ अलाभ का भी कहे नहीं ॥ २२ ॥ विना प्रयोजन से नहीं बोलनेवाला साधु भोजन

मायणमि गिद्धो चरेउंछ अयंपिरो ॥ अफासुय न भुंजेज्जा, कीय मुद्देसियाहड ॥ २३ ॥ सन्निहिं च न कुव्वेज्जा अणुमायपि संजए ॥ मुहाजीवी असंबुद्धे, हवेज्ज जग निस्सिए ॥ २४ ॥ लुहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरेसिया ॥ आसुरत्त न गच्छेज्जा सोच्चाणं जिणसासणं ॥ २५ ॥ कण्णसोक्खेहि सद्देहिं पेमं नाभिनिवेसए॥ दारुण कक्कसफासं, काएण अहियासए ॥ २६ ॥ खुह पिवास दुस्सेज्ज, सीउण्ह अरईभयं ॥ अहियासे अव्वहिओ, देहदुक्खं महाफलं ॥ २७ ॥ अत्थगयंमि

में गृद्ध होवे नहीं परंतु अज्ञात कुल में गमन करे वहां से उद्देशिक मोल लिया हुआ व सन्मुख लाया हुआ ऐसे ही अप्रासुक आहार ग्रहण करे नहीं ॥२३॥ साधु किंचिन्मात्र वस्तु का संचय करे नहीं सब सावद्य व्यापार कर्त्तव्य आसक्ति रहित भगजीवों के आधारभूत होवे ॥२४॥ जिनेश्वर भगवान का अनुशासन सुन कर साधु रूक्षवृत्ति वाला होवे जो मीले उस में संतुष्ट रहे, अल्प इच्छा वाला होवे सुख से आजीविका करे, और क्रोध करे नहीं ॥ ५५ ॥ कान को सुखकारी शब्दों में प्रेमभाव धारन करे नहीं वैसे ही दारुण कर्कश स्पर्श को काया से सहन करे ॥ ५६ ॥ भगवान् उपदेश करते हैं कि धर्मार्थ देह को दुःख देने में महा फल है इसलिये क्षुधा, तृषा विषम स्थान में शयन शीत, उष्ण, अरति व भय इन को दीनपना रहित सहन करे ॥ २७ ॥ सूर्यास्त हुए पीछे और सूर्योदय हुए पहिले साधु अशनादि

अइचे, पुरत्थाअ अणुग्गए ॥ आहार माइय सव्व, मणसावि न पत्थए ॥ २८ ॥
अतिंतिणे अचवले ॥ अप्पभासी मियासणे ॥ हवेज्ज उयरे दंते, थोव लद्धु न खिसए
॥ २९ ॥ नबाहिरं परिभवे, अत्ताण न समुक्कसे॥सुय लाभे न मज्जेजा, जच्च तवस्सि
बुद्धिए ॥ ३० ॥ से जाण मजाणवा, कटु आहम्मिय पय ॥ सवरे खिप्पमप्पाण,
बीयत न समायरे ॥ ३१ ॥ अणायार परक्कम्म, नेवगूहे ननिण्हवे ॥ सुई सया

चारों आहार सुंघने का पदार्थ व आंखों में डालने का पदार्थ मन से भोगना वांच्छे नहीं ॥ २८ ॥ आहार नहीं मीलने पर किंचिन्मात्र नहीं बोलने वाले, अचपल, स्थिर, अल्पभाषी, परिमित भोजन करने वाले, और अपने उदर का निर्वाह करन वाले साधु होते हैं वे थोडा भी आहार पानी मील जावे तो निंदा नहीं करते हैं ॥ २९ ॥ दूसरे की उन्नति देखकर उस का पराभव करे नहीं, वैसे ही स्वतः को पदा पनावे नहीं सूत्र का लाभ होने पर मद करे नहीं वैसे ही ज्ञाति तप व बुद्धि का भी मद करे नहीं ॥ ३० ॥ किसी समय जानते या अजानते अधर्मकारी कार्य हो गया होवे अर्थात् मूल गुन उत्तर गुन की विराधना हुई होवे तो शीघ्रमेव ही आलोचना करक निवृत्त होवे और पुनः ऐसा करे नहीं ॥ ३१ ॥ शुचि भाव धारन करने।।मे सदैव प्रकट भाव धारन करने वाले, इन्द्रियों को अपने

नियडभावे, असंसत्ते जिइंदिए ॥ ३२ ॥ अमोहं वयणकुज्जा, आयरियस्स महप्पणो ॥
तं परिगिज्झ वायाए कम्मुणाउववायए ॥ ३३ ॥ अधुवं जीवियं नच्चा, सिद्धिमग्ग
वियाणिया ॥ विणियट्टिज्ज भोगेसु आउ परिमियप्पणो ॥ ३४ ॥ बल थामंच पेहाए,
सद्धामारोग मप्पणा ॥ खेत्तं कालं च विन्नाय, तहप्पाणं निजुंजए ॥ ३५ ॥ जरा
जाव न पीलेइ वाही जाव न वड्ढइ ॥ जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे
॥ ३६ ॥ कोहं माणं च मायं च लोभंच पाववड्ढणं ॥ वमे चत्तारि दोसेओ, इच्छंतो

भाव में रक्षण करे और प्रतिबंध रहित साधु आनाचार का सेवन करके छिपावे नहीं ॥ ३२ ॥ श्रुतादि गुन से श्रेष्ठ आचार्य के वचन को निष्फल करे नहीं परंतु उसे अंगीकार करके वचन व कर्म से उन का कार्य करे ॥ ३३ ॥ मनुष्य का आयुष्य थोडा (१०० वर्ष मात्र) है और वह भी अध्रुव व अ स्वभाव वाला है ऐसा मानकर पांचों इन्द्रिय के काम भोग से निवर्त कर ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जो मुक्ति मार्ग है उसे सत्य जानकर उस में उद्यम करे ॥ ३४ ॥ अपना बल, पराक्रम श्रद्धा व आरोग्य देखकर और देश काल को जानकर अपने कर्तव्य में लगे ॥ ३५ ॥ जबलग वृद्धावस्था पीडित नहीं करे और जहां लग व्याधि की वृद्धि नहीं होवे जहां लग इन्द्रियों का बल क्षीण नहीं होवे वहां लग धर्म का आचरण करे ॥ ३६ ॥ आत्मा का हित इच्छने वाला क्रोधमान माया व लोभ को पाप बढानेवाला मानकर उन का वमन करे ॥ ३७ ॥ क्रोध प्रीति का नाश करता है

हियमप्पणा ॥ ३७ ॥ कोहो पीइं पणासेइ, माणा विणय नासणो ॥ माया मित्ताणि नासइ, लोभो सव्वविणासणो ॥ ३८ ॥ उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ॥ मायं मज्जवभावेण, लोभ संतोसओ जिण ॥ ३९ ॥ कोहोय माणोय अणिग्गहिया, मायाय लोभोय पवड्ढमाणा ॥ चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचति मूलाई पुणब्भवस्स ॥ ४० ॥ राइणिएसु विणयं पउंजे, धुवसीलयं सयय न हावएज्जा ॥ कुम्मोव अल्लीण पलीणगुत्तो, परक्कमेज्जा तवसंजमंमि ॥ ४१ ॥ निद्दंच न बहुम-

मान विनय का नाश करता है माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सब गुण का विनाश करता है ॥ ३८ ॥ उपशम-क्षमा से क्रोध का नाश करे मृदुता से मान का जय करे, ऋजुता (सरलपना) से माया का जय करे और संतोष से लोभ का जय करे ॥ ३९ ॥ निग्रह में नहीं रहे हुए क्रोध व मान और वृद्धि पाये हुए माया व लोभ ये चार अशुभ कर्म के कारणभूत कषाय पुनर्जन्म के वृक्ष का सिंचन करती हैं ॥ ४० ॥ दीक्षा व ज्ञान से अधिक रत्नाधिक साधुओं में विनय करना चाहिये अठारह सहस्र शीलांग पालन रूप शील का नाश करना नहीं कूर्म-काचबे जैसे अपनी इन्द्रियों का गोपन करनेवाले साधु तप व संयम में पराक्रम करे ॥ ४१ ॥ साधु निद्रा को बहुत मान देवे नहीं अर्थात् बहुत निद्रा लेवे नहीं,

त्रियडभावे, असेसच्चे जिइंदिए ॥ ३२ ॥ अमोहं वयणकुज्जा आयरियस्स महप्पणो ॥ तं परिगिज्झ वायाए कम्मुणाउववायए ॥ ३३ ॥ अधुवं जीविय नच्चा, सिद्धिमग्ग वियाणिया ॥ विणियट्टिज्ज भोगेसु आउं परिमियप्पणो ॥ ३४ ॥ बल थामंच पेहाए, सद्धामारोग मप्पणो ॥ खेत्तं काल च विन्नाय, तहप्पाण निजुंजए ॥ ३५ ॥ जरा आव न पीलेइ वाही जाव न वड्ढइ ॥ जाविंदिया न हायंति, ताव धम्म समायरे ॥ ३६ ॥ कोहं माणं च मायं च, लोभंच पाववड्ढण ॥ वमे चत्तारि दोसेओ, इच्छंतो

धम में रहने वाले और प्रतिबंध रहित साधु अनाचार का सेवन करके छिपावे नहीं ॥ ३२ ॥ गुणादि गुन से श्रेष्ठ आचार्य के वचन को निष्फल करे नहीं परंतु उसे अंगीकार करके वचन व कर्म से उन का कार्य करे ॥ ३३ ॥ मनुष्य का आयुष्य थोडा (१०० वर्ष मात्र) है और वह भी अध्रुव व स्वभाव वाला है ऐसा मानकर पांचों इन्द्रिय के काम भोग से निवर्त कर ज्ञान दर्शन चारित्र रूप जो मुक्ति मार्ग है उसे सत्य जानकर उस में उद्यम करे ॥ ३४ ॥ अपना बल पराक्रम श्रद्धा व आरोग्य देखकर और देश काल को जानकर अपने कर्तव्य में लगे ॥ ३५ ॥ जबलग वृद्धावस्था पीडित नहीं करे और जहां लग व्याधि की वृद्धि नहीं होवे जहां लग इन्द्रियों का बल क्षीण नहीं होवे वहां लग धर्म का आचरण करे ॥ ३६ ॥ आत्मा का हित इच्छने वाला क्रोध मान माया व लोभ को पाप बढानेवाला मानकर उस का वमन करे ॥ ३७ ॥ क्रोध प्रीति का नाश करता है

पिट्ठओ ॥ नयऊरु समासिज्जा चिट्ठेज्जा गरुणंतिए ॥ ४६ ॥ अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा ॥ पिट्ठिमंस न खाएज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥ ४७ ॥ अप्पत्तियं जेणसिया, आसुकुप्पेज्ज वा परो ॥ सव्वसो तं न भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥ ४८ ॥ दिट्ठंमियं असंदिद्धं, पडिपुण्णं वियंजियं ॥ अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥ ४९ ॥ आयार पन्नत्तिधरं, दिट्ठिवाय महिज्जगं॥ वायविक्खलियंनच्चा, न तं उवहसे मुणी ॥ ५० ॥ नक्खत्तं सुमिणं जोगं निमित्तं मंतभेसजं ॥गिहिणो तं

नहीं, वैसे ही गुरु के सन्मुख पीठ करके बैठे नहीं वैसे ही गुरु के पास पांव पर पांव चढा कर बैठे नहीं ॥ ४६ ॥ विना बोलाया बोले नहीं, वैसे ही गुरु कोई से बोलते होवे तो उस के बीच में भी बोले नहीं पीछे से किसी की चुगली व निन्दा करे नहीं और माया मृषा का त्याग करे ॥४७॥ जिस वचन बोलने से अप्रतीति होवे जिस से शीघ्र क्रोध आ जावे, वैसी अहित करनेवाली भाषा सर्वथा प्रकार से साधु बोले नहीं ॥ ४८ ॥ परंतु आत्मार्थी साधु स्वतःने जो बात देखी होवे उस संबंधी, परिमित, संशय रहित प्रतिपूर्ण (स्वरव्यंजनादिक से स्पष्ट उच्चार वाली) व्यक्त परिचित, और उद्वेग रहित ऐसी भाषा बोले ॥ ४९ ॥ आचारांग भगवती दृष्टिवाद के अध्ययन करने वाले ऐसे साधु भी यदि बोलते हुए चूक जावे तो उन का मुनि उपहास करे नहीं ॥ ५० ॥ साधु-नक्षत्र, शुभाशुभ स्वप्न, वशीकरण

भेज्जा, सप्पहास विवज्जए ॥ मिहोकहार्हि न रमे, सज्झायमि रओ सया ॥ ४२ ॥
जोगच समण धम्ममि, जुंजे अणलसो धुवं ॥ जुत्तोय समणधम्ममि, अट्ठ लहइ
अणुत्तर ॥ ४३ ॥ इहलाग पारत्तहिय, जेण गच्छइ सोग्गइ ॥ बहुसुयं पज्जुवासेज्जा,
पुच्छेज्जत्थविणिच्छियं ॥ ४४ ॥ हत्थं पायच कायच, पणिहाय जिइंदिए ॥ अल्लीण
गुत्तो निसिए, सगासे गुरुणो मुणी ॥ ४५ ॥ न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण

हास्य का त्याग करे विकथा एकांत की बात चित्त का त्याग करे और सदैव स्वाध्याय में रमण करे ॥ ४२ ॥ आलस्य का त्याग करनेवाला साधु निश्चय ही श्रमण धर्म में मन वचन व काया के योगों को युंजे और श्रमण धर्म में युक्त बनकर अनुत्तर अर्थ की प्राप्ति करे ॥ ४३ ॥ जिस ज्ञान प्रमुख वस्तु से इस लोक व परलोक के हितकारी सुगति अर्थात् परंपरा से मोक्ष गति में जावे ऐसा ज्ञानादिक प्राप्त करने के लिये बहु सूत्री की पर्युपासना करना और अर्थ का निर्णय के लिये पृच्छा करना ॥ ४४ ॥ जितेन्द्रिय हाथ पांव काया को अविनय न होवे वैसे संकोच कर उपयोग रखता हुवा गुरु के पास बैठे ॥ ४५ ॥ गुरु के पास रहते हुए विनीत साधु गुरु के बराबर बैठे नहीं, क्यों कि इस से अन्य को गुरु शिष्य की खबर रहे नहीं गुरु के आगे बैठे नहीं, क्यों कि गुरु को दूसरे बराबर वंदनादि कर सके

पिट्ठओ ॥ नयऊरु समासिज्जा चिट्ठेज्जा गरुणतिए ॥ ४६ ॥ अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अतरा ॥ पिट्ठिमस न खाएज्जा, मायामोस विवज्जए ॥ ४७ ॥ अप्पत्तिय जेणसिया, आसुकुप्पेज्ज या परो ॥ सव्वसो त न भासेज्जा, भास अहियगामिणिं ॥ ४८ ॥ दिट्ठमिय असदिद्ध, पडिपुण्ण वियजिय ॥ अयपिरमणुव्विग्ग, भास निसिर अत्तय ॥ ४९ ॥ आयार पन्नत्तिधर, दिट्ठिवाय महिज्जग॥ वायाविक्खलियनच्चा, न त उवहसे मुणी ॥ ५० ॥ नक्खत्त सुमिण जोग निमित्त मतभेसज ॥गिहिणो त

नहीं, वैसे ही गुरु क सन्मुख पीठ करके बैठे नहीं, वैसे ही गुरु के पास पांव पर पांव चढा कर बैठे नहीं ॥ ४६ ॥ बिना बोलाया बोले नहीं, वैसे ही गुरु कोई से बोलते होवे तो उस के बीच में भी बोले नहीं ॥ ४७ ॥ जिस वचन बोलने से पीछे से किसी की चुगली व निन्दा करे नहीं और माया मृषा का त्याग करे ॥४७॥ जिस वचन बोलने से अप्रतीति होवे जिस से शीघ्र क्रोध आ जावे, वैसी अहित करनेवाली भाषा सर्वथा प्रकार से साधु बोले नहीं ॥ ४८ ॥ परतु आत्मार्थी साधु स्वत ने जो बात देखी होवे उस संबधी, परिमित, सशय रहित प्रतिपूर्ण (स्वरव्यंजनादिक से स्पष्ट उच्चार वाली) व्यक्त परिचित, और उद्वेग रहित ऐसी भाषा बोले ॥ ४९ ॥ आचारांग भगवती दृष्टिवाद के अध्ययन करने वाले ऐसे साधु भी यदि बोलते हुए चूक जावे तो उन का मुनि उपहास करे नहीं ॥ ५० ॥ साधु-नक्षत्र, शुभाशुभ स्वप्न, वशीकरण

न आइक्खे, भूयाहिगरण पय ॥ ५१ ॥ अन्नट्ठं पगडं लयण, भएज्ज सयणासण ॥ उच्चारभूमिसंपन्न, इत्थी पसुविवज्जिय ॥ ५२ ॥ विविताय भवे सेज्जा, नारीणं न लवे कहं ॥ गिहिसंथवं न कुज्जा कुज्जा साहूहिसंथवं॥ ५३ ॥ जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्चं कुललओ भय ॥एव खु बंभयारिस्स,इत्थी विग्गहओ भय ॥५४॥ चित्त भित्तिं

योग, निमित्त मंत्र व भैषज्य ये गृहस्थ को कहे नहीं, क्यों कि ये प्राणीयों को दुःख के स्थानक हैं ॥ ५१ ॥अन्य के लिये बनाया हुवा स्पुनीत बडीनीत भूमि व स्त्री पशु व पंडग रहित स्थानक का सेवन करे ऐसे ही अन्य के लिये बनाये हुए शयन आसन का भी सेवन करे ॥ ५२ ॥ जिस स्थानक में अकेला साधु हो और दूसरा साधु अथवा श्रावक कोई भी होवे नहीं सो अकेली स्त्री को धर्म कथा करे नहीं इस से गृहस्थादिक को ब्रह्मचर्य में शंका होवे गृहस्थ का विशेष परिचय करे नहीं परंतु ब्रह्मचारी साधुओं की ही संगति करे ॥ ५३ ॥ स्त्री साथ रहने से ब्रह्मचर्य में होता हुवा दोष कहते हैं जैसे मुर्गी के बच्चे को सदैव बिल्ली से भय रहता है वैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री के शरीर से भय रहता है यहां केवल विद्यमान स्त्री के शरीर से भय है ऐसा नहीं परंतु स्त्री के मृत शरीर से भी भय रहता है ऐसा सूत्रकार का अभिप्राय है ॥५४॥ आभरणालंकार से अलंकृत स्त्री का चित्र भी निरीक्षण करना नहीं

न निज्झाए नारिंवा सुअलकियं ॥ भक्खर पित्र दछूण दिट्ठिं पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥ हत्थपाय पडिच्छिन्नं, कण्ण नासाविगप्पिय ॥ अवि वाससयं नारिं, बभयारी विवज्जए ॥ ५६ ॥ विभूसा इत्थि संसग्गो, पणीयं रसभोयणं ॥ नरस्सत्त गवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ ५७ ॥ अगपच्चग संठाणं, चारुल्लविय पेहियं ॥ इत्थीण तं न निज्झाए, कामराग विवड्ढण ॥ ५८ ॥ विसएसु मणुन्नेसु, पेमं नाभ निवेसए ॥ अणिच्च तेसिं विन्नाय, परिणामं पोग्गलाणय ॥ ५९ ॥ पोग्गलाण परिणाम, तेसिं नच्चा जहा तहा ॥ विणिय तण्होविहरे, सीईभूएण अप्पणा ॥ ६० ॥ जाए

परंतु भिक्षा आदिकार्य के लिये साधु को देखने का प्रयोजन होवे तो जसे सूर्य को देखकर दृष्टि पीछी खींच लेते हैं ऐसे ही स्त्री को देखकर दृष्टि पीछी खींच लेवे ॥ ५५ ॥ जो स्त्री सो वर्ष की वृद्ध होवे, जिस के हाथ पांव कान व नाक कट गये होवे वैसी स्त्री का भी ब्रह्मचारी पुरुष को त्याग करना अर्थात् जहां ऐसी स्त्री रहती होवे वैसे स्थान में ब्रह्मचारी को रहना नहीं कल्पता है ॥ ५६ ॥ आत्मा की गवेषणा करने वाले पुरुष को विभूषा स्त्रियोंका ससर्ग,और घृत बिन्दुओं से झरता हुवा प्रणीत रस वाला आहार तालपुट विषसमान है ॥ ५७ ॥ स्त्री के अंग प्रत्यंग वेणी आंखों आदि शरीर के स्थान काम बढाने वाले हैं इस से उन को साधु कदापि देखे नहीं॥५८॥शब्दादि पुद्गल परिणाम को अनित्य जानकर साधु म [illegible] विषयों में प्रेम करे नहीं॥५९॥उन पुद्गल परिणाम को यथातथ्य जानकर अपना शीतली भूत आत्मा से तृष्णा

सद्धाए निक्खंतो, परियायट्ठाण मुत्तमं ॥ तमेव अणुपालेज्जा, गुणे आयरियसंमए ॥ ६१ ॥ तवं चिमं संजम जोगयं च, सज्झाय जोगं च सया अहिट्ठिए ॥ सूरेव सेणाए सम्मत्तमाउहे, अलमप्पणो होइ अलं परेसिं ॥६२॥ सज्झाय सुज्झाण रयस्स ताइणो, अपावभावस्स तवे रयस्स विसुज्झइ जंसि मलं पुरेकडं समीरियं रुप्पमलं व जोइणा ॥ ६३ ॥ से तारिसे दुक्खसहे जिइंदिए, सुएण जुत्ते अममे अकिंचणे ॥ विरायइ कम्मघणम्मि अवगए, कसिणब्भ पुडावगमे व चंदिमे त्तिबेमि ॥ ६४ ॥ इति॥८॥

का त्याग करता हुवा विचरे ॥ ६० ॥ जैसी श्रद्धा से संसार रूप कीचड से नीकलकर संयम रूप उत्तम स्थान प्राप्त किया उस ही श्रद्धा से तीर्थंकर के मान्य मूल गुन व उत्तर गुनों का पालन करे ॥ ६१ ॥ तप संयम व स्वाध्याय करनेवाला जो साधु है वह सेना में संपूर्ण आयुधवाला शूर वीर पुरुष जैसे अपना व दूसरे का रक्षण करने में समर्थ होता है ॥ ६२ ॥ जैसे अग्नि से रूपा का मेल शुद्ध होता है वैसे ही स्वाध्याय रूप शुभध्यान में आसक्त, अपनी व पर की रक्षा करनेवाले शुद्ध भाववाले व तप में आसक्त पुरुषों का पूर्व संचित कर्म रूप जो मेल होता है वह शुद्ध हो जाता है॥६३॥ जैसे बदल का आच्छादन दूर होने से संपूर्ण चद्रमा दीखता है वैसे ही पूर्वोक्त प्रकार दुःख सहन करनेवाले, जितेन्द्रिय श्रुत युक्त ममता रहित, और किंचिन्मात्र द्रव्य रहित ऐसा साधु घन कर्मों का क्षय होनेसे शोभते हुवे विराजते हैं॥६४॥ ऐसा मैं कहता हूं यह आचार प्रणिधि नामक आठवा अध्ययन पूर्ण हुवा ॥ ८ ॥ *

॥ विनयसमाधि नामक नवम मध्ययनम् ॥

थभा व कोहा व मय प्पमाया, गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ॥ सो चेव ओ तस्स अभूइभावा, फलं व कीयस्स वहाय होइ ॥ जया वि मदत्ति गुरु त्तिइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए ति नचा ॥ हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करेंति आसायण ते गुरूण ॥ १ ॥ पगईए मदावि भवंति एगे, डहरावि य जे सुय बुद्धोववेया ॥ आयारमंतो गुण

आठवे अध्ययन में आचार रूप निधान का कथन किया ऐसा निधान विनीत साधु को प्राप्त होता है इस लिये नववे अध्ययन में विनय की विधि कहते हैं—जो साधु अभिमान क्रोध, मद व प्रमाद से गुरु के पास से विनय का अभ्यास नहीं करता है वे ही अभिमान आदि उस के ज्ञान रूप संपदा का नाश करनेवाले होते हैं और बांस के फल समान उस का ही वध करते हैं ॥ १ ॥ जो कोई साधु अपने गुरु को मंद बुद्धिवाले, छोटी वयवाले अथवा अल्प श्रुत के ज्ञाता है ऐसा जानकर उन की हीलना तिरस्कार व निंदा करते हैं वे साधु मिथ्यात्व प्राप्त करते हुए गुरु की आशातना करते हैं ॥ २ ॥ कितनेक साधु कर्म की विचित्रता से वयोवृद्ध होने पर भी मंद बुद्धिवाले होते हैं और कितनेक अल्प वयवाले होने पर श्रुत व बुद्धि से युक्त होते हैं परंतु आचारवान अर्थात् सम्यक् प्रकार से आचार का पालन करनेवाले व गुनों में अपने आत्मा को स्थिर रखनेवाले साधु की निंदा करनेवाले अपने ज्ञानादि गुण को अग्नि समान भस्म करते हैं अर्थात् जैसे अग्नि काष्ट को जलाकर भस्म करती है वैसे ही

सुट्ठियप्पा, जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा ॥ ३ ॥ जेया वि नाग डहरंति नच्चा, आसायए स अहियाय होइ ॥ एवायरियंपि हु हीलयंतो, नियच्छइ जाइपहं खु मंदे ॥ ४ ॥ आसीविसोवावि परं सुरुट्ठो, किंजीव नासाओ परं नु कुज्जा ॥ आयरिय पाया पुण अप्पसन्ना, अबोहिआसायण नत्थिमोक्खो ॥ ५ ॥ जोपावगं जलियमवक्कमज्जा आसीविसं वावि हु कोवएज्जा ॥ जोवा विसं खायइ जीवियट्ठी,

गुरु की हीलना करने से ज्ञानादि गुन भस्म होते हैं ॥ ३ ॥ या कोइ मूर्ख सर्प को छोटा मानकर उस को पीड़ा करता है तो वह छोटा सर्प भी उस दुःख देनेवाले का अहित कर सकता है वैसे ही आचार्य की हीलना करनेवाला मूर्ख जाति पथ द्वीन्द्रियादि जाति में जाता है ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त दृष्टांत दार्ष्टांतिक में बहुत भिन्नता है सो कहते हैं—कदाचित् सर्प बहुत रुष्ट हो जाय तो भी जीव का नाश करने सिवाय और क्या कर सकता है अर्थात् वह मात्र प्राण हरन कर सकता है परंतु आचार्य अप्रसन्न होने से मिथ्यात्व की प्राप्ति होजाती है इस लिये आचार्य की आसातना करने से मोक्ष कदापि नहीं मिलता है ॥५॥ जो कोई जीने की इच्छा करनेवाला जाज्वल्यमान अग्नि में जाकर पड़े, अथवा सर्प को कुपित करे, अथवा विष खा जावे तो वह जीवित नहीं रहता है परन्तु मर जाता है, ऐसी उपमा गुरु की आसातना करनेवाले को

एसोवमासायणया गुरूण ॥६॥ सियाहुसे पावय नोडहेज्जा, आसीविसो वा कुविओ न भक्खे ॥ सिया विस हलाहल न मारे नयावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥७ ॥ जोपव्वय सिरसा भित्तुमिच्छे, सुत्तव सीह पडिबोहएज्जा॥ जोवा दए सत्तिअग्गे पहार, एसोवमा सायणया गुरूण ॥८॥ सिया हु सासेण गिरिंपि भिंदे, सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे॥ सिया न भिंदेज्ज सत्तिअग्ग, नयावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥९॥ आयरिय पाया पुण

मानना अथात् गुरु की आसातना करने वाला संयम रूपजीवित से भ्रष्ट होता है ॥ ६ ॥ इस में और भी विशेषता बताते हैं—कदाचित मन्त्रादिक प्रयोग से अग्नि जलावे नहीं, सर्प कुपित बनकर भक्षण करे नहीं और विष भी हलाहल खाने से मारे नहीं, परन्तु गुरु की हीलना करनेवाले को तो मोक्ष नहीं है ॥ ७ ॥ और भी दृष्टांत कहते हैं—जो कोई अपने मस्तक से पर्वत को भेदने का इच्छे, सोया हुवा सिंह को जगाने का इच्छे अथवा शक्ति के अग्र भाग को प्रहार करने का इच्छे तो वह दुःखी होता है वैसे ही श्रमण गुरु की आसातना करने वाला भी दुःखी होता है ॥ ८ ॥ कदाचित् वासुदेव लब्धिवंत मस्तक से पर्वत का भेदन करसके कदाचित् कुपित हुवा सिंह शीलव्रतादिक के प्रभाव से भक्षण न करे अथवा कदाचित् मंत्र प्रयोग से भाला के अग्र भाग से पांवभे दावे नहीं परन्तु गुरु की हीलना करनेवाले को तो मोक्ष कदापि नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसे ही आचार्य अप्रसन्न होने से मनोभि मिथ्यात्व प्राप्त होता है

अप्पसन्ना, अबोहि आसायण नत्थि मोक्खो ॥ तम्हा अणाबाह सुहाभिकंखी, गुरुप्पसायाभिमुहोरमेज्जा ॥ १० ॥ जहाहि अग्गी जलण नमसे, नाणाहुई मंतपयाभिसित्त ॥ एवायरिय उवचिट्ठएज्जा अणतनाणोवगओ विसंतो ॥ ११ ॥ जस्संतिए धम्मपयाइ सिक्खे तस्संतिए वेणइय पउंजे॥ सक्कारए सिरसा पंजलीओ, कायग्गीरा भो मणसा य निच्चं॥ १२॥ लज्जा दया संजम बंभचेरं, कल्लाण भागिस्स विसोहि ठाणं॥

इस म द्वन की आशातना करने से मोक्ष नहीं है इस लिये मोक्ष सुख की पोच्छा करनेवाले गुरु को प्रसन्न रखने में उद्यमवंत होवे ॥ १० ॥ जैसे अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण अग्नि को अनेक प्रकार के घृत मधु आदि के होम से या वेद पद के मंत्रों से सिंचन कर नमस्कार सेवा करता है वैसे ही विनीत साधु भी आचार्य के समीप रहकर उन की सेवा करे केवल ज्ञानी व चौदह पूर्व के पाठी भी सदैव गुरु की सेवा करते हैं तो अन्य का तो कहना ही क्या अर्थात् अन्य को भी गुरु भक्ति करना उचित है ॥ ११ ॥ जिन गुरु के पास से धर्म का एक पद भी पढा हो तो उन का विनय करना चाहिये दोनों हाथ जोडकर मस्तक पर रख कर, नमाकर पंचांग नमावे यों वचन और मन से सदैव नमस्कार करे मात्र पठन के समय नमस्कार करना इतना नहीं परन्तु सदैव ऐसा विनय करे॥ १२॥ कल्याण अर्थ का भागी-शुभ मार्ग में चलने के लिये

जे मे गुरु सयय अणुसासयति, तेहिं गुरुं सययं पूययामि ॥ १३ ॥ जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासइ केवल भारहंतु ॥ एवायरिआ सुय सील बुद्धिए, विरायई सूरमज्झेवइन्दे ॥ १४ ॥ जहा ससीकोमुइ जोगजुत्ता,नक्खत्ततारागण परिवुडप्पा ॥ खे सोहइ विमले अब्भमुक्के, एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥ १५ ॥ महागरा आयरिया महेसी समाहिजोगे सुय सील बुद्धिए॥सपाविओ कामे अणुत्तराइ आराहए

लज्जा दया, संयम, ब्रह्मचर्य और विशुद्धि स्थान इन का जो गुरु मुझे निरंतर उपदेश करते हैं उन की मैं सदैव पूजा करता हूं ॥ १३ ॥ जैसे रात्रि के अंत में अर्थात् प्रातःकाल में तपता हुवा सूर्य संपूर्ण भरत क्षेत्र में प्रकाश करता है वैसे ही श्रुत व शील में बुद्धिवाला आचार्य देवलोक में इन्द्रादि रहते हैं उस समान यहां पर साधु समुदाय में रहते हैं ॥ १४ ॥ जैसे चंद्रिका के योग से युक्त अर्थात् कार्तिकी पूर्णिमा को निकला हुवा नक्षत्र व ताराओं के परिवार से परवरा हुवा चद्रमा निर्मल आकाश में विमल दीखता है, वैसे ही विनीत आचार्य का पद प्राप्त करके अपने साधु समुदाय में निर्मल शोभते हैं ॥ १५ ॥ धर्मार्थी शिष्य ज्ञान दर्शन व चारित्र रूप रत्नों के आगर, छ काया के जीवों की दया पालनेवाले, मन वचन व काया के योगों में समाधिवंत, श्रुत ज्ञान से बुद्धिवंत, मोक्ष सुख के अभिलाषी, ऐसे आचार्य को

अप्पसन्ना, अबाहि आसायण नत्थि मोक्खो ॥ तम्हा अणाबाह सुहाभिकंखी गुरुप्पसायाभिमुहोरमेज्जा ॥ १० ॥ जहाहि अग्गी जलण नमसे, नाणाहुई मतपयाभिसित्त ॥ ऽवायरिय उवचिट्ठएज्जा अणतनाणावगओ विसतो ॥ ११ ॥ जरसतिए धम्मपयाइ सिक्ख तस्सतिए विणइय पउज्जे॥ सक्कारए सिरसा पजलीओ, कायग्गीरा भो मणसा य निच्चं॥ १२॥ लज्जा दया सजम बभचेर, कल्लाण भागिस्स विसोहि ठाण॥

इस म इन की आशातना करने से मोक्ष नहीं है इस लिये मोक्ष सुख की वाच्छा करनेवाले गुरु को प्रसन्न रखने में उद्यमवत होवे ॥ १० ॥ जैसे अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण अग्नि को अनेक प्रकार के घृत मधु आदि के होम से या वेद पद के मंत्रों से सिंचन कर नमस्कार सेवा करता है वैसे ही विनीत साधु भी आचार्य क समीप रहकर उन की सेवा करे केवल ज्ञानी व चौदह पूर्व के पाठी भी सदैव गुरु की सेवा करते है तो अन्य का तो कहना ही क्या।अर्थात् अन्य को भी गुरु भक्ति करना उचित है ॥ ११ ॥ जिन गुरु क पास से धर्म का एक पद भी पढा हो तो उन का विनय करना चाहिये दोनों हाथ जोडकर मस्तक व काया, नमाकर मस्तएण वदामि यों वचन और मन से सदैव सत्कार करे मात्र पाठलेन के समय नमस्कार करना इतना नहीं परन्तु सदैव ऐसा विनय करे॥ १२॥ कल्याण अर्थ का भागी-शुभ मार्ग में चलने के लिय

पम्मो असे मोक्खे ॥ जेण किर्सि सुय सिग्घ, निस्सेस चाभिगच्छइ ॥२॥ जे य चडे मिए थद्धे दुव्वाई नियडी सढे ॥ वुग्घइ से अविणीयप्पा कट्ठं सोयगयं जहा ॥ ३ ॥ विणयाए जो उवाएणं चाइओ कुप्पई नरो ॥ दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं दंडेण पडिसेहए ॥४॥ तहेव अविणीयप्पा उववज्झा हयागया दीसंति दुहमेहहंता, आभिओगमुवट्ठिया ॥५॥ तहेव सुविणी

पत्र महाव्रत रूप शाखा है ६ पांच महाव्रत की पचीस भावना रूप प्रतिशाखा है, ७ धर्मध्यान शुक्ल ध्यान रूप पत्ता है ८ सत्तरह प्रकार के संयम व पचेन्द्रिय के २३ विषय को जीतने रूप पत्र है ९ क्षांत आदि दश यति धर्म रूप पुष्प और उस में यश में रूप सुगंध है, १० मोक्ष रूप फल है और ११ [illegible] रस समान सा मोक्ष का निराबाध सुख है यों एक विनय से अनुक्रम से सब गुणों की प्राप्ति होती है यावत् विनयवान साधु इस लोक व परलोक में प्रधान श्रुत ज्ञान को प्राप्त करके मन को श्लाघनीय बनाता है और अंत में मोक्ष सुख पाता है ॥ २ ॥ जो साधु क्रोधी, मूर्ख, अभिमानी [illegible], कपटी और शठ है, ऐसा अविनीत साधु प्रवाह में तणाता हुवा काष्ट समान संसार समुद्र में चारों ओर तणाता है ॥ ३ ॥ मधुर वचन रूप उपाय से विनय में किसी को गुरु प्रेरणा करे और जो कुपित हो जावे तो वह पुरुष आती हुइ दीव्य लक्ष्मी को दंड से मार कर निकाल देता है ऐसा जानना ॥ ४ ॥ ऐसे ही प्रधान सनापति प्रमुख के अविनीत हाथी, घोडे प्रमुख सेवकपना को प्राप्त होकर भार उठाने का

तोसए धम्मकामी ॥१६॥ सोच्चाण मेहावि सुभासियाइं, सुस्सूसए आयरियमप्पमत्तो॥ आराहइत्ताण गुणे अणेगे से पावइ सिद्धि मणुत्तरं त्तिबेमि ॥ १७ ॥ इति विणय समाही नवमज्झयणस्स पढमोद्देसो सम्मत्तो ॥ ९ ॥ १ ॥ * * *

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स खंधाओ पच्छा समुवंतिसाहा ॥ साहाप्पसाहा विरुहंति पत्ता तओ से पुप्फं च फलं रसोय ॥ १ ॥ (गाहा—एवं धम्मस्स विणओ, मूल

विनय भक्ति से संतोष कर उन को आराधते हैं ॥ १२ ॥ बुद्धिमान शिष्य उक्त गणधर महाराज के कथित वचनों श्रवण कर अप्रमादपन सदैव आचार्य की भक्ति करते हैं और ज्ञान, विनय, तप, दया आदि अनेक गुणों का आराधन कर अनुत्तर मोक्ष मार्ग प्राप्त करते हैं ऐसा मैं कहता हूं यह विनय समाधि अध्ययन का प्रथम उद्देशा संपूर्ण हुआ ॥ २ ॥ १ ॥ ० ०

अब दूसरा उद्देशा कहते हैं इस में विनय को वृक्ष के दृष्टांत से शोभित करते हैं—जैसे वृक्ष को प्रथम मूल होता है २ मूल से कंद होता है ३ कंद से स्कंध होता है ४ स्कंध से त्वचा होती है ५ त्वचा हुए पीछे शाखा होवे ६ शाखा में से प्रतिशाखा होवे ७ प्रतिशाखा हुए पीछे पल्लव होवे, ८ पल्लव से पत्र होवे, ९ पत्र पीछे पुष्प होवे १० पुष्प से फल होवे और ११ फल में मधुर रस होवे यों इग्यारह बोल से वृक्ष होता है यह द्रव्य दृष्टान्त कहा ॥ १ ॥ अब उस का भावार्थ कहते हैं धर्म रूप वृक्ष का विनय रूप मूल है, २ धैर्य रूप कंद है, ३ ज्ञान रूप स्कंध है, ४ शुभ भाव रूप त्वचा है,

सुहमेहता इड्डिपत्ता महाजसा ॥ ११ ॥ जे आयरिय उवज्झायाण ॥ सुस्सुसावयणं करे ॥ तेसिं सिक्खा पवड्ढति जलसित्ताइव पायवा ॥ १२ ॥ अप्पणट्ठा परट्ठावा, सिप्पानेऊणियाणिय ॥ गिहिणो उवभोगट्ठा इहलोगस्स कारणा ॥ १३ ॥ जेणबंध वहघोर, परियावय दारुण ॥ सिक्खमाणा नअच्छति, जुत्ता ते ललिइंदिया ॥१४॥ ते पित गुरु पूयति, तस्स सिप्पस्स कारणा ॥ सक्कारति नमसति, तुट्ठा निद्देसवत्ति ॥ १५ ॥ किं पुण जे सुयग्गाहि, अणत हिय कामए ॥ आयरिया जं वए भिक्खू,

वैसे ही व्यंतर और गूधक भवनपति आदि देव ऋद्धिवाले व यशस्वी बनकर सुखी देखाते हैं यों सब स्थान अविनीत दुःखी और विनीत सुखी रहता है ॥ ११ ॥ जो आचार्य उपाध्याय की शुश्रूषा करनेवाले और उन की आज्ञानुसार करनेवाले होते हैं उन की ग्रहणा आसेवन प्रमुख शिक्षा पानी से सिंचाये हुये वृक्ष समान वृद्धि को प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ गृहस्थ इस लोक में उपभोग-अन्नादिक की प्राप्ति के लिये अपनी आजीविका अथवा दूसरे की आजीविका के लिये शिष्य बनकर कलाचार्य के पास कलाओं का अभ्यास करते हैं ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के लिये पडे २ श्रीमंत राजपुत्रादिक भी बंधन घोर वध, और दारुण परिताप सहन करते हैं ॥ १३ १४ ॥ वे राजपुत्रादिक भी उस शिक्षा के लिये उन गुरु की सेवा करते हैं, सत्कार करते हैं, नमस्कार करते हैं और प्रसन्न बनकर उन की आज्ञा में रहते हैं ॥ १५ ॥ जब राजपुत्रादि गुरु की सेवा करते हैं तो केवलि

अब्भाहयत्ता हया गया ॥ दीसंति सुहमेहता इड्ढिं पत्ता महायसा ॥६॥ तहेव अविणीयप्पा लोगसि नरनारीओ ॥ दीसंति दुहमेहता छाया ते विगलिंदिया ॥ ७ ॥ दंड सत्थपरिजुण्णा असब्भवयणहिय॥ कलुणा विवन्न छंदा, खुप्पिवासए परिगया॥८॥ तहेव सुविणीयप्पा, लोगसि नरनारीओ ॥ दीसंति सुहमेहता, इड्ढिपत्ता महायसा ॥ ९ ॥ तहेव अविणीयप्पा देवा जक्खा य गुज्झगा ॥ दीसंति दुहमेहता आभिओग मुवट्ठिया ॥ १० ॥ तहेव सुविणीयप्पा, देवा जक्खाय गुज्झगा ॥ दीसंति

दुःख सहन करते हुए दीसते हैं ॥ ५ ॥ जैसे ही प्रधान सेनापति प्रमुख के विनीत हाथी घोडे वगैरह यश पराक्रम धन व ऋद्धि प्राप्त कर सुख सुखी दीसते हैं॥६॥ वैसे ही लोक में अविनीत स्त्री पुरुष भी दुःखी दीसते हैं और उन के शरीर भी कुरूप दीसते हैं ॥ ७ ॥ और भी वे स्त्री पुरुष दण्डादि प्रहार से पीट रहे हैं शस्त्र से घात पाते हैं दुःख से शरीर जीर्ण होजाते हैं, और दंड तथा वचनोंका प्रहार सदैव सहन करते हैं, अनेक पुरुषों के मुख से असत्य अवर्णवाद श्रवण करते हैं, दीन वचन बोलते हुए अन्यकी आज्ञानुसार चलते हैं यों पराधीन रहे हुए क्षुधा तृषा शीत तापादिक अनेक दुःख भोगवते हुए प्रत्यक्ष में देखाते हैं ॥ ८ ॥ इस लोक में जो स्त्री पुरुष विनयवंत हैं वे महा यशस्वी ऋद्धिको प्राप्त कर सुखी दीसते हैं ॥ ९ ॥ वैसे ही अविनीत देव, यक्ष और गुह्यक भवनपति आदि सेवकपना प्राप्त करके दुःखी दीसते हैं ॥ १० ॥

कालछंदोवयारच पडिलेहित्ताण हेउहिं ॥ तेण तेण उवएण, तत संपडिवायए ॥ २० ॥ विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्सय ॥ जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥ २१ ॥ (काव्य) जेयाविचडे मयइड्डि गारवे पिसुणेनरे साहसहीणपेसणे ॥ अदिट्ठधम्मेविणए अकोविए ॥ असंविभागी न हु तस्स मोक्खो ॥ २३ ॥ निद्देसवित्ती पुण जे गुरूण, सुयत्थ धम्मा विणयम्मि कोविया ॥

के वचन श्रवन करे ॥ २० ॥ काल व गुरु की इच्छा व उपचार संयोगों से जानकर योग्य उपायों से आचार्यों के योग्य वस्तु संपादन करे ॥ २१ ॥ इस प्रकार उक्त कथन का सार विनीत को ज्ञानादि गुन की प्राप्ति और अविनीत को ज्ञानादि गुण की हानि, यों दोनों को जानकर जो विनय में अपनी आत्मा को जोडता है वह आसेवना व ग्रहणा यों दोनो प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ जो कोई मनुष्य चारित्र ग्रहण किये पीछे बहुत क्रोधी होवे, ऋद्धि गर्व में जिस की बुद्धि होवे, चुगली करने वाला होवे अकार्य में साहसिक, गुरु की आज्ञा मे नहीं रहने वाला शुद्ध चारित्र धर्म को सम्यक् प्रकार से नहीं जानने वाला विनय किस प्रकार करना सो नहीं जानने वाला, और जो असंविभाग करता है उस को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २३ ॥ और जो गुरु की आज्ञानुसार कार्य करता है, गीतार्थ और विनय

तम्हा त नाइवचए ॥ १६ ॥ नीय सिज्ज गइ ठाण नाय च आसणाणिय ॥
नीयच पाए वदज्जा नीय कुज्जाय अजलि ॥ १७ ॥ सवट्टइत्ता काएण तहा उवहि
णामवि ॥ खमेह अवराहम वएज्जा न पुणोत्तिय ॥ १८ ॥ दुग्गओवा पओएण
चाइओ वहइ रह ॥ एव दुबुद्धि किञ्चाण वुत्तोवुत्तो पकुव्वइ ॥ १९ ॥ आलवते
लवतेवा न निसिज्जए पडिसुण ॥ मोत्तूण आसणधीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे ॥ २० ॥

मगीत श्रुत ग्रहण करनेवाले और मोक्ष के कामी का तो कहना ही क्या अर्थात् उन को आचार्य की सेवा अवश्य करना चाहिये इस लिये आचार्य जो कहे उन की आज्ञा का साधु कदापि उल्लंघन करे नहीं ॥ १६ ॥ अब विनय कैसे होवे सो बताते हैं गुरु के आसन से नीचे आसन पर बैठे अथवा शयन करे गुरु के पीछे २ चले, गुरु से नीची भूमि में खडा रहे नीचा नमकर गुरु के पांव को वदन करे नीचा नमकर दोनों हाथ जोडकर गुरु की आज्ञा प्रमाण करे ॥ १७ ॥ काया से अथवा उपाधि से कदाचित् गुरु के शरीर का संघट्टा हो गया होवे तो उस की क्षमा मांगे और फीर ऐसा नहीं करूंगा यों बोले ॥ १८ ॥ अब विनीत व अविनीत का लक्षण कहते हैं—जैसे गलयार बैल चाबूकादिक के प्रहार पडने पर रथ चलाता है वैसे ही अविनीत शिष्य भी कोई भी कार्य देने पर उसे वारंवार कहने से वह काम करता है ॥ १९ ॥ अब विनीत शिष्य का कहते हैं—कि गुरु एक वार या वारंवार बोलावे तो विनीत शिष्य सोता हुवा सुने नहीं, परंतु आसन छोड कर सेवा करता हुवा गुरु

कालछंदोवयारच, पडिलेहित्ताण हेउहिं ॥ तेण तेण उवएग, तत संपडिवायए ॥ २० ॥ विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्सय ॥ जस्सेय दुहओ नाय, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥ २१ ॥ (काव्य) जेयावि चंडे मयइड्डि गारवे पिसुणेनरे साहसहीणपेसणे ॥ अदिट्ठधम्मेविणए अकोविए ॥ असंविभागी न हु तस्स मोक्खो ॥ २३ ॥ निद्देसवित्ती पुण जे गुरूणं, सुयत्थ धम्मा विणयम्मि कोविया ॥

के वचन श्रवन करे ॥ २० ॥ काल व गुरु की इच्छा व उपचार संयोगों से जानकर योग्य उपायो से आचार्यों के योग्य वस्तु संपादन करे ॥ २१ ॥ इस प्रकार उक्त कथन का सार विनीत को ज्ञानादि गुन की प्राप्ति और अविनीत को ज्ञानादि गुण की हानि, यो दोनों को जानकर जो विनय में अपनी आत्मा को जोडता है वह आसेवना व ग्रहणा यों दोनो प्रकार की शिक्षा प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ जो कोई मनुष्य चारित्र ग्रहण किये पीछे बहुत क्रोधी होवे, ऋद्धि गर्व में जिस की बुद्धि होवे, चुगली करने वाला होवे अकार्य में साहसिक, गुरु की आज्ञा मे नहीं रहने वाला शुद्ध चारित्र धर्म को सम्यक प्रकार से नहीं जानने वाला विनय किस प्रकार करना सो नहीं जानने वाला, और जो असंविभाग करता है उस को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ॥ २३ ॥ और जो गुरु की आज्ञानुसार कार्य करता है, गीतार्थ और विनय

तम्हा त नाइवचए ॥ १६ ॥ नीय सिज्ज गई ठाण नीय च आसणाणिय ॥
नीयच पाए वदज्जा नीय कुज्जाय अजलि ॥ १७ ॥ सघट्टइत्ता काएण तहा उवहि
णामवि ॥ खमेह अवराहम वएज्जा न पुणोत्तिय ॥ १८ ॥ दुग्गओवा पओएण
चोइओ वहइ रह ॥ एव दुबुद्धि किच्चाण, वुत्तावुत्तो पकुव्वइ ॥ १९ ॥ आलवते
लवतेवा न निसिज्जाए पडिसुण ॥ मोत्तूण आसणधीरो सुस्सूसाए पडिस्सुणे ॥ २० ॥

भगीत श्रुत ग्रहण करनेवाले और मोक्ष के कामी का तो करना ही क्या अथात् उन को आचार्यकी सेवा अवश्य करना चाहिये इस लिये आचार्य जो कहे उन की आज्ञा का साधु कदापि उल्लघन करे नहीं ॥ १६ ॥ अब विनय कैसे होवे सो बताते हैं गुरु के आसन से नीचे आसन पर बैठे अथवा शयन करे गुरु के पीछे २ चले, गुरु से नीची भूमि में खडा रहे नीचा नमकर गुरु के पांव को वदन करे नीचा नमकर दोनों हाथ जोडकर गुरु की आज्ञा प्रमाण करे ॥ १७ ॥ काया से अथवा उपाधि से कदाचित् गुरु के शरीर को सघट्टा हो भूल होवे तो उस की क्षमा मांग और फीर ऐसा नहीं करूंगा यों बोले ॥ १८ ॥ अब विनीत व अविनीत का लक्षण कहते हैं—जैसे गलयार बैल चाबूकादिक के प्रहार पडने पर रथ चलाता है वैसे ही अविनीत शिष्य भी काइ भी कार्य देने पर उस वारवार कहने से वह कार्य करता है ॥ १९ ॥ अब विनीत शिष्य का कहते है—कि गुरु एक वार या वारवार बोलावे तो विनीत शिष्य सोता हुवा सुने नहीं, परंतु आसन छोड कर सेवा करता हुवा गुरु

॥ २ ॥ राइणिएसु विणय पउजे डहरावियमुअ परियायजेट्ठा ॥ नियत्तणे वटइ सघवाई, ओवायव वक्क करे सपुज्जो ॥ ३ ॥ अन्नाय उच्छ चरइ विसुद्ध जवणट्ठया समुयाण च निच्च ॥ अलद्धुय नो परिदेवण्ज्जा, लद्धु न विकत्थयई स पुज्जो ॥ ४ ॥ सथार सिज्जासण भत्तपाणे, अप्पिच्छया अइलाभे विसत ॥ जोएव मप्पाणभि तोसएज्जा सतोसपाहन्न रए सपुज्जो ॥ ५ ॥ सक्का सहेउ आसा कंटया, अओमया

पनता है ॥ २ ॥ जो साधु अपने से बडे रत्नाधिक का विनय करता है, वैसे ही वय में छोटे होने पर भी श्रुत व दीक्षा मे बडे साधुओं का जो विनय करता है अपने से अधिक गुणवान स जो सदैव नम्र रहता है अल्प बोलता है, आचार्यादिक को वदना नमस्कार करता है और उन का वचन प्रमाण करता है वह साधु पूज्यनीय होता है, ॥ ३ ॥ जो साधु सयम के निर्वाह के लिये ४२ दोष रहित शुद्ध सामदानिक आहार अज्ञात कुल में से थोडा २ लेने के लिये निकलते है आहार प्राप्त नहीं होने पर दातार अथवा देश की निंदा नहीं करता है आहार आदि प्राप्त होने पर दातार अथवा देश की प्रशसा नहीं करता है वह साधु पूज्यनीय होता है ॥ ४ ॥ सथारा शैय्या, आसन भक्त व पान बहुत मीलने पर अल्प इच्छावाला होता है और जरूरत सिवाय ज्यादा नहीं ग्रहण करता है जो प्रधान सतोष में रक्त बना हुवा जो मीले उस में सतोष धारन करता है वह साधु पूज्यनीय होता है ॥ ५ ॥ उत्साहवान पुरुष आशा में लोहमय कंटक

तरित्तु तेओघमिणं दुरुत्तरं खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गय त्तियेमि ॥ २४ ॥

इति विणयसमाहि नवम ज्झयणस्स वीओ उद्देसो ॥ ९ ॥ २ ॥ * *

(काव्य) आयरियग्गि मिवाहिअग्गी सुस्सूसमाणे पडिजागरज्जा ॥ आलोइय इंगिय मेव नच्चा, जो छंद माराहई स पुज्जो ॥ १ ॥ आयारमट्ठा विणय पउंजे, सुस्सू समाणो परिगिज्झ वक्कं ॥ जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरु तु नासायई स पुज्जो ।

का ज्ञाता होता है, वह दुस्तर संसार समुद्र को तीर कर और सब कार्य का जय कर उत्तम मोक्ष गति को प्राप्त करता है ऐसा मैं कहता हूं ॥ २४ ॥ यह विनय समाधि नामक नववां अध्ययन का दूसरा उद्देशा संपूर्ण हुआ ॥ ९ ॥ २ ॥ * * *

अब तीसरा उद्देशा कहते हैं जैसे अग्नि होत्री ब्राह्मण अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ सावध रहता है वैसे ही विनीत शिष्य आचार्य की सम्यक् प्रकार से शुश्रूषा करता हुआ सावधान रहता है इस तरह आचार्य के इंगित आकार स्वभाव को जानकर उन की इच्छानुसार जो कार्य करता है वह पूज्यनीय बनता है ॥ १ ॥ जो शिष्य आचार के लिये विनय करता है और जो आचार्य की शुश्रूषा करता हुआ उन के वचन ग्रहण कर उन के कहने जैसे कार्य करने में आलस्य नहीं करता है वह शिष्य पूज्यनीय

अप्पियकारिणिंच, भास न भासेज्ज सया स पुज्जो ॥ ९ ॥ अलोलुए अकुहए अमाई, अपिसुणेयावि अदीणवित्ती ॥ नो भावए नो विय भावियप्पा, अकोउहल्लेय सया स पुज्जो ॥ १० ॥ गुणेहिं साहू अगुणेहिं साहू गेण्हाहिं साहू गुणमुंच साहू ॥ वियाणिया अप्पगमप्पएण, जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो ॥ ११ ॥ तहेव डहरंच महल्लगंवा इत्थी पुमं पव्वइयं गिहिं वा ॥ नो हीलए नो विय खिसएज्जा, थंभ च कोहं च चए स पुज्जो ॥ १२ ॥ जे माणिया सययं माणयंति, जत्तेण कन्नंव निवे-

निश्चयकारिणी व अप्रियकारिणी जो भाषा नहीं बोलता है वह साधु पूज्यनीय होता है ॥ ९ ॥ जो साधु आहारादिक में लोलुपता रहित इन्द्रजालादि कौतुक रहित, अमायी, पिशुनता रहित, अदीन वृत्तिवाला, अन्य के पास अपनी प्रशंसा नहीं करनेवाला, अपनी प्रशंसा अन्य के पास नहीं करनेवाला और कुतूहलपना रहित होता है वह साधु सदैव पूज्यनीय होता है ॥ १० ॥ पूर्वोक्त विनय प्रमुख गुणों से साधु होता है और उस से विपरीत अविनय प्रमुख गुणों से असाधु होता है इस से साधु के गुणों को ग्रहण कर और असाधुके गुणों का त्याग कर जो अपने आत्मा को पूर्वोक्त गुणवाला जानकर राग द्वेष में समभाव वाला रहता है वही पूज्यनीय होता है ॥ ११ ॥ वैसे ही छोटे अथवा बडे, स्त्री अथवा पुरुष और दीक्षित अथवा गृहस्थ की हीलना (निंदा) व खिंसना (तिरस्कार) नहीं करता है और अभिमान व क्रोध का त्याग करता है वही पूज्यनीय होता है ॥ १२ ॥ जैसे मातापिता कन्या को बडी करके योग्य पति साथ उस का विवाह करते हैं वैसे ही अभ्युत्थान विनय इत्यादि से सदैव मान पाये हुवे आचार्य, सत्कार

उष्छहया नेरेण ॥ अणासए जो उ सहेज्ज कंटए, वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥ ६ ॥ मुहुत्तदुक्खा उ हवंति कंटया, अओमया तेवितओ सुउद्धरा ॥ वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि वेराणुबन्धीणि महब्भयाणि ॥ ७ ॥ समावयंता वयणाभिघाया कण्ण गयादुम्मणिय जणंति ॥ धम्मोत्ति किच्चा परमग्गसूरे जिइंदिए जो सहइस पुज्जो ॥ ८ ॥ अवण्णवायंच परम्मुहस्स, पच्चक्खओ पडिणीयंच भास ॥ ओहारणिं

सहन करसकता है अर्थात् स्वार्थी मनुष्य द्रव्य की आशा में लोह कण्टक के शयन में सो जा सकता है, परंतु जो साधु बिना आशा से कान में प्रवेश करनेवाले कण्टक समान वचन सहन करता है वह ही पूज्यनीय होता है ॥ ६ ॥ लोहमय कण्टक का दुःख मुहूर्त मात्र रहता है और उस में भी उस का निकलना सहज होता है परंतु कठोर वचन रूप कण्टक हृदय में से निकलना बड़ा कठिन है वे पीछे वैर उत्पन्न करनेवाले होते हैं और नरकापात वगैरह महाभय करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥ कठोर वचन रूप प्रहार सुनने में आते ही मन में दुष्ट विकार उत्पन्न होते हैं परंतु सब से उत्कृष्ट शूरवीर जितेन्द्रिय उस के सहन करने में धर्म है ऐसा मानकर सहन करता है वही पूज्यनीय होता है ॥ ८ ॥ पीठ पीछे मनुष्य का अवर्णवाद जो कदापि नहीं बोलता है अर्थात् निंदा नहीं करता है प्रत्यक्ष में कषाय उत्पन्न होवे वैसी भाषा भी नहीं बोलता

सुए तवेय, आयारे निच्च पंडिया ॥ अभिरामयति अप्पाण, जे भवति जिइंदिया ॥ १ ॥ * ॥ चउव्विहा खलु विणय समाही भवइ तंजहा अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ सम्म संपडिवज्जइ, वयमाराहइ नय भवइ अत्तसंपग्गहिए, चउत्थपयं भवइ ॥ भवइय इत्थ सिलोगो (गाहा) पेहेइ हियाणु सासण, सुस्सूसई तच पुणो अहिट्ठिए॥नय माणमएण मज्जइ, विणयसमाहि आययट्ठिए ॥ १ ॥ १ ॥ चउव्विहा खलु सुय समाही भवइ तंजहा सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्वं भवइ, एगग्गचित्तो भविस्सामिति अज्झाइयव्वं भवइ, अप्पाणं ठावइस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ, ठिओपर ठावइस्सामिति अज्झाइयव्वं भवइ ॥ चउत्थं पयं भवइ ॥ भवइ एत्थ सिलोगो

स्थविर-स्थविर भगवानने निम्नोक्त चार स्थानक विनय समाधि के कहे हैं जिन के नाम १ विनय समाधि २ श्रुत समाधि ३ तप समाधि और ४ आचार समाधि. जो जितेन्द्रिय साधु विनय, श्रुत, तप व आचार में सदैव रमण करते हैं वे ही पंडित कहाते हैं ॥ २ ॥ १ ॥ इस में से विनय समाधि के चार भेद कहे हैं—१ गुरु के पास से ज्ञानादि गुन का जो शिक्षण प्राप्त हुवा है वह उन को महा उपकारी है ऐसा जानकर उन का विनय करे, २ गुरु जो हित शिक्षा देवे उस को बहुत ही विनय युक्त अंगीकार करे ३ शास्त्र के कथनानुसार गुरु आदि का विनय करे और ४ आप स्वय विनीत होने पर विनीतपने का अभिमान करे नहीं इन चार पद में चौथा पद अभिमान त्यजने का कहा उसे सदैव ध्यान में रखे इस के लिये गाथा कहते हैं मोक्ष का अर्थी साधु आचार्य उपाध्याय के पास से हितकारी उपदेश इच्छे,

सयति ॥ ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥ १३ ॥ तेसिं गुरूण गुणसागराण, सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं॥ चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउ कसायावगए स पुज्जो ॥१४॥ गुरुमिह सययं पडियरियमुणी,जिणमय निउणे अभिगमकुसले॥धुणियरयमलं पुरेकडं भासुरमउलं गइंगइ त्तिबेमि॥१५॥नइओ उद्देसो सम्मत्तो ॥ (गद्य)सुयं मे आउसं!तेणं भगवया एव मक्खायं इह खलु थेरेहिं, भगवंतेहिं, चत्तारि विणय समाहिठाणा पण्णत्ता ॥ कयरा खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय समाहि ठाणा पण्णत्ता ? इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहि ठाणा पण्णत्ता तंजहा–विणय समाही,सुय समाही,तव समाही,आयार समाही॥(गाहा)विणए

सन्मान करनेवाले शिष्य को विनयवन्त व गुणवंत देखकर आचार्य पदी पर स्थापन करते हैं वैसे मान के योग्य आचार्य को या कोई तपस्वी, जितेन्द्रिय व सत्य वचन में रक्त साधु आदर सत्कार करता है वह पूज्यनीय होता है ॥१३॥ पांच महाव्रतमें रक्त,तिन गुप्तिवाला और चार कषायको दूर करने वाला जो उत्तम गुणोंके सागर समान गुरुका शुभ उपदेश सुनकर विचरता है वह साधु पूज्यनीय होता है॥१४॥ जिन मतमें निपुण व अभिगम वैयावृत्यमें कुशल मुनि सदैव गुरुकी परिचर्या करके पूर्व संचित कर्मरूप रजमैलको दूर करके ज्ञान रूप तेजवाले सर्वोत्तम सिद्ध गतिमें जाता है॥१५॥ऐसा मैं कहता हूं यह तीसरा उद्देशा पूर्ण हुआ

अहो आयुष्यमान् शिष्य ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है स्थविर भगवानने विनय समाधि के चार स्थानक कहे हैं प्रश्न-स्थविर भगवानने विनय समाधि के कौन २ से चार स्थानक कहे हैं

सुए तवेय, आयारे निच्च पडिया ॥ अभिरामयति अप्पाण, जे भवति जिइंदिया ॥ १ ॥ • ॥ चउव्विहा खलु विणय समाही भवइ तजहा अणुसासिज्जतो सुस्सूसइ सम्म संपडिवज्जइ, वयमाराहइ नय भवइ अत्तसपग्गहिए, चउत्थपय भवइ ॥ भवइय इत्थ सिलोगो (गाहा) पेहेइ हियाणु सासण, सुस्सूसई तच पूणो अहिट्ठिए॥नय माणमएण मज्जइ, विणयसमाहि आययट्ठिए ॥ १ ॥ १ ॥ चउव्विहा खलु सुय समाही भवइ तजहा सुयं मे भविस्सइत्ति अज्झाइयव्व भवइ, एगग्गचित्तो भविस्सामित्ति अज्झाइयव्व भवइ, अप्पाण ठावइस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ, ठिओपर ठावइस्सामिति अज्झाइयव्व भवइ ॥ चउत्थ पय भवइ ॥ भवइ एत्थ सिलोगा

उधर स्थविर भगवानने निम्नोक्त चार स्थानक विनय समाधि के कहे हैं जिन के नाम १ विनय समाधि २ श्रुत समाधि ३ तप समाधि और ४ आचार समाधि. जो जितेन्द्रिय साधु विनय, श्रुत, तप व आचार में सदैव रमण करते हैं वे ही पंडित कहाते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ इस में से विनय समाधि के चार भेद कहे हैं—१ गुरु के पास से ज्ञानादि गुन का जो शिक्षण प्राप्त हुवा है वह उन को महा उपकारी है ऐसा जानकर उन का विनय करे, २ गुरु जो हित शिक्षा देवे उस को बहुत ही विनय युक्त अंगीकार करे ३ शास्त्र के कथनानुसार गुरु आदि का विनय करे और ४ आप स्वय विनीत होने पर विनीतपने का अभिमान करे नहीं इन चार पद में चौथा पद अभिमान त्यजने का कहा उसे सदैव ध्यान में रखे इस के लिये गाथा कहते हैं मोक्ष का अर्थी साधु आचार्य उपाध्याय के पास से हितकारी उपदेश इच्छे,

सयति ॥ ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो ॥ १३ ॥ तेसिं गुरूण गुणसागराण, सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं॥ चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउ-कसायवगए स पुज्जो ॥१४॥ गुरुमिह सययं पडियरियमुणी,जिणमय निउणे अभिग मकुसले॥धुणियरयमलं पुरेकडं भासुरमउलं गइंवइ त्तिबेमि॥१५॥तइओद्देसो सम्मत्तो ॥

(गद्य)सुयं मे आउसं!तेणं भगवया एवं मक्खायं इह खलु थेरेहिं, भगवंतहिं, चत्तारि विणय समाहिठाणा पण्णत्ता ॥ कयरा खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणय समाहि ठाणा पण्णत्ता ? इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहि ठाणा पण्णत्ता तंजहा—विणय समाही,सुय समाही,तव समाही,आयार समाही॥(गाहा)विणए

सन्मान करनेवाले शिष्य को विनयवन्त व गुणवंत देखकर आचार्य पद्वी पर स्थापन करते हैं वैसे मान के योग्य आचार्य को जो कोई तपस्वी, जितेन्द्रिय व सत्य वचन में रक्त साधु आदर सत्कार करता है वह पूज्यनीय होता है ॥१३॥ पांच महाव्रतमें रक्त,तीन गुप्तिवाला और चार कषायको दूर करने वाला जो पंडित गुण गुणोंके सागर समान गुरुका शुभ उपदेश सुनकर विचरता है वह साधु पूज्यनीय होता है॥१४॥ जिन मतमें निपुण व अभिगम वैयावृत्यमें कुशल मुनि सदैव गुरुकी परिचर्या करके पूर्व संचित कर्मरूप रजमैलको दूर करके ज्ञान रूप चमत्कारी सर्वोत्तम सिद्ध गतिमें जाता है॥१५॥ऐसा मैं कहता हूं यह तीसरा उद्देशा पूर्ण हुवा

अहो आयुष्यमान् शिष्य ! मैंने सुना है उन भगवानने ऐसा कहा है स्थविर भगवानने विनय समाधि के चार स्थानक कहे हैं प्रश्न-स्थविर भगवानने विनय समाधि के कौन २ से चार स्थानक कहे हैं

आयारमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठिज्जा, नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयार महिट्ठिज्जा, नन्नत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयार महिट्ठिज्जा, चउत्थ पय भवइ ॥ भवइ अ एत्थ सिलोगो(गाहा)—जिणवयणरए अतिंतिणो पडिपुण्णाययइ मायपट्ठिए॥

की तप समाधि कही है यथा १ इस लोक के सुख के लिये तप करे नहीं, २ परलोक के सुख के लिये तप करे नहीं ३ कीर्ति,[1] वर्ण [2] शब्द [3] श्लाघा[4] के लिये तप करे नहीं परतु निर्जरार्थ तपके निर्जरा सिवाय और किसी कार्य के लिये तप करे नहीं इस में चतुर्थ पद है उसे सदैव ध्यान में रखे और इस की एक गाथा कहते हैं तपसमाधि में सदा युक्त अनेक गुण वाले तप में आसक्त, किसी प्रकार की आशा रहित व निर्जरा का अर्थी ऐसा साधु तप से पूर्व के पाप कर्म का नाश करता है ॥ १ ॥ ३ ॥ आचार समाधि के चार भेद कहे हैं यथा—१ इस लोक के सुख के लिये आचार का पालन करे नहीं २ परलोक के सुख की इच्छा से आचार का पालन करे नहीं, ३ कीर्ति, वर्ण शब्द व श्लाघा के लिये आचार का पालन करे नहीं ४ परन्तु अरिहंत प्रणीत सिद्धांत के हेतु सिवाय अन्य के लिये आचार का पालन करे नहीं यह चौथा पद सदैव ध्यान में रखे इसकी एक गाथा कहते हैं आचार समाधि से आश्रव का निरुंधन करने वाला जिन वचन में आसक्त होता है किसीने एक बार कहा होवे तो उस को इर्षा से वारंवार नहीं कहने वाला होता है, प्रतिपूर्ण अतिशय वाला,

१ सब दिशामें प्रसिद्ध सो कीर्ति २ अनेक दिशा में प्रसिद्धि सो वर्ण, ३ आधा दिशा में प्रसिद्धि सो शब्द और ४ स्वस्थान में प्रसिद्धि सो श्लाघा

(गाहा)—णाणमेगग्गचित्तोय, ठिओ अठावयइ पर ॥ सुयाणिय अहिज्जित्ता, रओ सुय समाहिए ॥ १ ॥ २ ॥ चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ तंजहा-नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा नो परलोग ट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो किंचि वण्णसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा नन्नत्थनिज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, चउत्थं पय भवइ ॥ भवइ एत्थ सिलोगो (गाहा) विविहगुण तवोरएय निच्च भवइ निरासए निज्जरट्ठिए ॥ तवसा धुणइ पुराण पावग, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥१॥३॥ चउव्विहा खलु आयार समाहि भवइ तंजहा नो इह लोगट्ठयाए

आचार्यने जो उपदेश किया होवे उसे उस अनुसार जाने जो जाना होवे उस का आचरण करे और इस तरह आचरण करते विनय समाधि संयम में मद करे नहीं ॥१॥२॥श्रुत समाधि के चार भेद कहे हैं तद्यथा १ अभ्यास करने से मुझे आचारांगादि द्वादशांग का ज्ञान होगा यों जानकर अभ्यास करे, २ अभ्यास करने से मैं एकाग्र चित्तवाला होऊंगा, यों जानकर अभ्यास करे ३ अपने आत्मा को धर्म में स्थापन करूंगा, यों जानकर अभ्यास करे ४ मैं धर्म में स्थिर बना हुआ अन्य को स्थिर करूंगा, यों जानकर अभ्यास करे इस का चार चतुर्थ पद भी ध्यानमें रखे और इस श्रुत समाधिकी एक गाथा कहते हैं निरन्तर अध्ययन करने वाले साधु को ज्ञान होता है ज्ञान होने से चित्त की एकाग्रता होती है, चित्त की एकाग्रता होने से संयम धर्म में स्थिर होता है और संयम धर्म में स्थिर होने वाला अन्य को स्थिर करता है यों विविध प्रकार के श्रुत का अभ्यास करके श्रुत समाधि में रक्त होना ॥ १ ॥ २ ॥ चार प्रकार

आवि गच्छे, धतं नो पडियायइ जे स भिक्खू॥ १ ॥ पुढविं न खणे न खणावए, सीओदग न पिए न पियावए ॥ अगणिसत्थ जहा सुनिसियं, त न जले न जलावए जे स भिक्खू ॥२॥ अनिलेण न वीए न वीयावए,हरियाणि न छिंद न छिंदावए ॥ बीयाणि सया विवज्जयंतो सचित्त नाहारए जे स भिक्खू ॥ ३ ॥ वहण तसथावराण होइ, पुढवि तण कट्ठ निस्सियाण ॥ तम्हा उद्देसिय न भुंजे, नो वि पए न पयावए

कहा पूर्वोक्त नवमी अध्ययन में कहे हुए आचार को सम्यक् प्रकार से पालने वाले भिक्षु कहाते हैं सो इस दशवे अध्ययन में कहते हैं—तीर्थंकर गणधर आचार्य प्रमुख के उपदेश से दीक्षा अंगीकार करके सर्वज्ञके वचन में जो सदैव प्रसन्न चित्तवाला रहता है वह भिक्षु कहाता है ॥ १ ॥ जो पुरुष पृथ्वीकाय का स्वयं खोदे नहीं, अन्य से खादावे नहीं और खोदते को अच्छा जाने नहीं जो ठंढा सचित्त पानी स्वयं पीए नहीं अन्य को पीलावे नहीं और पीने वाले की अनुमोदना करे नहीं और जो तीक्ष्ण अग्नि शस्त्र को आप स्वय प्रज्वालित करे नहीं अन्य से प्रज्वलित करावे नहीं और अन्य प्रज्वालित करने वाले को अच्छा जाने नहीं वही भिक्षु कहता है ॥ २ ॥ जो वींजना से पवन करे नहीं अन्य से विंजणा करावे नहीं और वींजना करने वाले को अच्छा माने नहीं जो हरिकाय का छेदन करे नहीं, अन्य से छेदन करावे नहीं और छेदन करते को अच्छा जाने नहीं सदैव सचित्त बीजका जो त्याग करे और जो सचित्त वस्तु का आहार करे नहीं वह भिक्षु है ॥ ३ ॥ आहार बनाते पृथ्वी, तृण काष्ट आश्रित त्रस व स्थावर जीवों का वध होवे इस लिये जो उद्देशिक आहार नहीं करता है स्वयं आहार पकावे न

आयारसमाहि संवुडे भवइय वसे भाव सधए ॥ १ ॥ ४ ॥ अभिगम चउरो समाहिओ सुविसुद्धो सुसमाहियप्पओ ॥ विउलहिय सुहावह पुणो ॥ कुव्वइअ सो पय खेमप्पणो ॥ १ ॥ जाइ मरणाओ मुच्चइ, इत्यत्थ च चएइ सव्वसो ॥ सिद्धेवा भवइ सासए ॥ देवा वा अप्परए महिड्डिए ॥ त्तियमि ॥ इति चउत्थोद्देसो सम्मत्तो ॥ ९ ॥ ४ ॥ विणय समाहि णाम नवमज्झयण सम्मत्त ॥ ९ ॥ *

॥ सभिक्षु नामक दशम मध्ययनम् ॥

निक्खम्म माणाइ अ बुद्धवयण, निच्चं चित्तसमाहिओ हवेज्जा ॥ इत्थीण वसन

मोक्ष का अर्थी, इन्द्रियों का दमन करने वाला और अपनी आत्मा का मोक्ष के पास ले जाने वाला होता है ॥ १ ॥ ४ ॥ मन वचन व काया से शुद्ध व सुसमाधिवंत साधु चार प्रकार की समाधि को अच्छी तरह जानकर अपने पद को विपुल हितकारी सुख देने वाला और कल्याणकारी करता है ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त गुण संपन्न साधु जन्म जरा व मरण से मुक्त होता है, और सपथा प्रकार से नारकी तिर्यंच मनुष्य संज्ञा पावे वैसा स्थान का त्याग करता है- इस से वह शाश्वत सिद्ध होता है अथवा तो अल्प कर्म रूप रज वाला महर्धिक देव होता है ॥७॥ यह चौथा उद्देशा संपूर्ण हुआ ॥९ ॥ ४ ॥ यह नवमा विनय समाधि नाम का अध्ययन भी संपूर्ण हुआ ॥ ९ ॥ * *

नवमे अध्ययन में आचार को सम्यक् प्रकार से पालन करने वाले साधु विनयवान होते हैं यह

॥ ८ ॥ तहेव असण पाणगंवा, विविहं खाइमं साइम लभित्ता ॥ छंदिय साहम्मि याण भुंजे भोच्चा सज्झायरएय जे स भिक्खू ॥ ९ ॥ नय वुग्गहियं कहं कहेज्जा, नय कुप्पे निहुइंदिए पसंते, संजम धुवजोगजुत्ते, उवसंते उवहेडए जे स भिक्खू ॥ १० ॥ जो सहइ हु गामकंटए, अक्कोस पहार तज्जणाओय, ॥ भयभेरवसद्द सप्पहासे, सम सुहदुक्खसहेय जे स भिक्खू ॥ ११ ॥ पडिम पडिवज्जिया मसाणे, नो भीए भय भेरवाइ दिअस्स ॥ विविह गुण तवो रएय निच्चं, न सरीरं चाभि कंखइ जे स भिक्खू ॥ १२ ॥ असइं वोसट्ठ चत्त देहे, अकुट्ठे व हए लूसिएवा ॥ पुढवि समे

अशन पान खादिम व स्वादिम प्राप्त हुए होवे उस के लिये अपने स्वधर्मी साधुओं के साथ जो भोगता है और भोगवकर स्वाध्याय में रक्त बनता है वही भिक्षु साधु है ॥ ९ ॥ किसी में कलह होवे वैसी कथा भी नहीं करता है, जो कुपित नहीं होता है, जिस की इन्द्रियों उद्धत नहीं है, जो प्रशांत संयम में सदैव मन वचन व काया से उचित प्रवृत्ति करने वाला, उपशांत और उचित कार्य करने वाला है वही भिक्षु है ॥ १० ॥ जो इन्द्रियों को दुःख देने वाले आक्रोश, प्रहार व तर्जना को सहन करता है और भयकर रौद्र अट्टहास्य सहित शब्द में क्षुभित न होता सम्यक प्रकार से सुख दुःख सहन करने वाला जो होता है वही भिक्षु है ॥ ११ ॥ श्मशान में विधि युक्त प्रतिमा अंगीकार किये पीछे भय उत्पन्न करे वैसे वैताल वगैरे रूप देख कर जो भय भीत नहीं होता है, जो विविध प्रकार के मूल गुण उत्तरगुण व तप में रक्त बना हुआ शरीर की कांक्षा नहीं करता है वही भिक्षु है ॥ १२ ॥ जो साधु

जे स भिक्खू ॥४॥ रोइय नायपुत्तवयणे अप्पसमे मन्निज्ज छप्पिकाए ॥ पंचयफासे महव्वयाइं पंचासवसंवरए जे स भिक्खू ॥५॥ चत्तारिवमे सया कसाए, धुव जोगीय हविज्ज बुद्ध वयणे ॥ अहणे निज्जाय रूवरयए गिहिजोगं परिवज्जए जे स भिक्खू ॥ ६ ॥ सम्मदिट्ठी सया अमूढे, अत्थि हु नाणे तव संजमेय ॥ तवसा धुणइ पुराण पावगं मण वय काय सुसंवुडे जे स भिक्खू ॥ ७ ॥ तहेव असणं पाणगंवा विविहं खाइमसाइमं लभित्ता ॥ होही अट्ठो सुए परेवा, तं नमिहे ननिहावए जे स भिक्खू

अन्य के पास पकवाने नहीं है और अशनादि पकाते को अच्छा नहीं जाने वह भिक्षुक है ॥४॥ ज्ञात पुत्र श्री महावीर के वचन की सच्ची श्रद्धा कर के पांच आश्रव का निरुंधन करने वाला अपना आत्म समान छही काया को माने और पांच महाव्रत का स्पर्श करे वह भिक्षु है ॥ ५ ॥ जो सदैव चार कषाय का वमन करता है, बुद्ध की प्रकार के वचन में निश्चल योग वाला होता है, चतुष्पदादि पशु धन सुवर्ण चांदी वगैरह का त्याग करने वाला और गृहस्थ के संसर्ग का त्याग करने वाला होता है वह भिक्षु है ॥६॥ जो समदृष्टि सदैव ज्ञान तप व संयम में प्रवृत्त होता है तपश्चर्या से पुराने पाप कर्म को दूर करता है, मन वचन और काया का जो संवर करने वाला है वही साधु है ॥ ७ ॥ जो विविध प्रकार अशन, पान, खादिम व स्वादिम प्राप्त करके कल अथवा परशु काम पड़ेगा ऐसे विचार से उस का जो संचय नहीं करता है, अन्य से संचय नहीं कराता है और करने वाले को अच्छा नहीं जानता है वह भिक्षु है ॥ ८ ॥ वैसे ही जो

जे सभिक्खू ॥ १६ ॥ अलोल भिक्खू न रसेसागिद्धे, उञ्छ चरेजीविय नाभिकंखी ॥ इड्ढिं च सक्कारण पूयणंच, चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू॥ १७॥ न परं वएज्जासि अयं कुसीले, जेणन कुप्पेज्ज न तं वएज्जा ॥ जाणिय पत्तेय पुण्णपावं, अत्ताण न समुक्कसे जे सभिक्खू ॥ १८॥ न जाइमत्ते नयरूवमत्ते, न लाभमत्ते न सुएणमत्ते ॥ मयाणि सव्वाणि विवज्जइत्ता, धम्मज्झाणरएय जे सभिक्खू ॥ १९ ॥ पवेयए अज्जपयं महामुणी, धम्मट्ठिओ ठावयई परंपि ॥ निक्खम्म वज्जेज्ज कुसील लिंगं, नयावि हास

व संयम रहित और सब प्रकार की द्रव्य व भाव संगति से रहित जो होता है वही भिक्षु है ॥ १६ ॥ जो साधु लोलुपता रहित, किसी प्रकार के रस में गृद्ध नहीं होता है अपरिचित कुल में गोचरी करता है, जीवित की इच्छा नहीं करता है ऋद्धि सत्कार व पूजा का जो त्याग करता है, और जो ज्ञानादिक में स्थिर आत्मावाला व माया कपट रहित है वह साधु है ॥ १७ ॥ यह कुशीलिया है ऐसा दूसरे को कहे नहीं, जिस से कोई कुपित होवे वैसा वचन भी किसी को कहे नहीं, सब के पृथक् पुण्य २ पाप जानकर अपने में गुण होते हुए भी अपना उत्कर्ष करे नहीं वही भिक्षु है ॥ १८ ॥ जो जाति का मद, रूप का मद, लाभ का मद और सूत्र का मद नहीं करता है और सब प्रकार के मद का त्याग कर के धर्म ध्यान में जो आसक्त होता है वही साधु है ॥ १९ ॥ जो महामुनि शुद्ध धर्म का उपदेश करता है, स्वतः धर्म में स्थिर बना हुआ अन्य को भी धर्म में स्थिर करता है, दीक्षा

मुणी हवेज्जा, अनियाणे अकोउहल्लेय जेसभिक्खू ॥१३॥ अभिभूय काएण परीसहाइं, समुद्धरे जाइ पहाओ अप्पयं ॥ विइत्तु जाइ मरणं महब्भयं, तवेरए सामणिए जे स भिक्खू ॥ १४ ॥ हत्थ संजए पाय संजए, वाय संजए संजइंदिए ॥ अज्झप्परए सुसमाहियप्पा सुतत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू ॥ १५ ॥ उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे, अन्नाय उंछं पुलनिप्पुलाए ॥कयविक्कय सन्निहिआ विरए, सव्व संगावगए

शरीर पर से राग द्वेष रहित होता है अथवा शरीर पर से आभूषण का त्याग करता है, जो कठोर आक्रोश कारी वचन से हणाया हुवा दंडादि से ताडना पाया हुवा अथवा खड्गादिक से हणाया हुवा और पृथ्वी समान क्षमा धारन करने वाला होता है वही साधु है ॥ १३ ॥ जो अपनी काया से परिषहों को जीत कर संसार मार्ग से अपना आत्मा का उद्धार करता है और जन्म मरण को महा भय वाला मान कर श्रमण योग्य तप में आ रक्त रहता है वही साधु है ॥ १४ ॥ कारण विना हाथ हिलावे नहीं, कारण विना पाँव हिलावे नहीं, कारणवशात् निर्दोष वचन बोले, सब इन्द्रियों को वश में रखे, शुभ ध्यान में जो आसक्त होवे जो सुसमाधिवंत होवे और सूत्र व अर्थ को जानता होवे वही भिक्षु है ॥ १५ ॥ वस्त्र पात्र प्रमुख उपधि में मूर्च्छा रहित किसी स्थान आसक्तिपना नहीं रखने वाला अज्ञात कुल में थोडा थोडा आहार लेने वाला, चारित्र में असारता उत्पन्न करे वैसे दोष से रहित, क्रयविक्रय

मुख्याधिकारी

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के शुद्धाचारी पूज्य श्री सुखा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य श्र तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी महाराज! आप श्रीने मुझे साथ ले महा परिश्रम से हैद्राबाद जैसा महा क्षेत्र साधुमार्गिय धर्म में प्रसिद्ध किया व परमोपदेश से राजाबहादुर दानवीर लाला सुखदेव सहायजी ज्वाला प्रसादजी को धर्मप्रेमी बनाये उनके प्रतापसे ही शास्त्रोद्धारादि महा काय हैद्राबाद में हुए इस लिये इस कार्य के मुख्याधिकारी आपही हुए भी जो भव्य जीवों इन शास्त्र द्वारा महालाभ प्राप्त करेंगे वे आपही के कृतज्ञ होंगे

उपकारी महात्मा

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के कविवरेन्द्र महा पुरुष श्री तिलोक ऋषिजी महाराज के पाटवीय शिष्य वर्य, पूज्य पाद गुरु वर्य श्री रत्नऋषिजी महाराज! आपश्री की आज्ञासे ही शास्त्रोद्धार का कार्य स्वीकार किया और आप के परमाशिर्वाद से पूर्ण कर सका इस लिये इस काय के परमोपकारी महात्मा आप ही हैं आप का उपकार केवल मेरे पर ही नहीं परन्तु जो जो भव्यों इन शास्त्रोंद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे उन सबपर ही होगा

कुहए ज सभिक्खू ॥२०॥ त देहवास असुइ असासय, सया चए निच हिय ठियप्पा॥ छिंदित्तु जाईमरणस्स बंधणं, उवेइ भिक्खू अपुणागमगइं त्तिबेमि ॥ २१ ॥ इति सभिक्खूनाम दसगमज्झयण सम्मत्त ॥१०॥ इति दसवैकालिक सूत्र सम्मत्त ॥२८॥ *

अंगीकार करके कुशीलिये का संग और हास्य चेष्टा का त्याग करता है वही भिक्षु है ॥२०॥ उपसहार-मोक्ष के कारण भूत समकित प्रमुख में जिस का आत्मा स्थिर बना है वैसा साधु शुक्र शोणित से अशुचिमय व अशाश्वत ऐसा देहका सदैव त्याग करता है यह साधु जन्म जरामरण के बंधनों का छेदन करके पुनरागमन नहीं होवे वैसी (सिद्ध) गति को प्राप्त करता है ॥२१॥ ऐसा मैं कहता हूं यह भिक्षु नामक दशवा अध्ययन संपूर्ण हुआ ॥ १० ॥ यह दशवैकालिक सूत्र सम्पूर्ण हुआ * *

॥इति अष्टाविंशतितम॥

* दशवैकालिक सूत्र समाप्तम्. *

वीर संवत २४४९ पोष शुदी १० सोमवार

सहायक मुनिमंडल

अपनी छती ऋद्धि का त्याग कर हैद्राबाद सीकन्द्राबादमें दीक्षा धारक बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजीके शिष्यवर ज्ञानानंदी श्री देव ऋषिजी वैय्यावृत्यी श्री राज ऋषिजी तपस्वी श्री उदय ऋषिजी और विद्याविलासी श्री मोहन ऋषिजी इन चारों मुनिवरोंने गुरु आज्ञाका बहुमानसे स्वीकार कर आहार पानी आदि सुखोप चार का संयोग मिला दो प्रहर का व्याख्यान, प्रसंगीसे वार्तालाप, काय दक्षता व समाधि भाव से सहाय दिया जिस से ही या महा कार्य इतनी शीघ्रता से लेखक पूर्ण सके इस लिये इन कार्य पहल उक्त मुनिवरों का भी बडा उपकार है

और भी सहायदाता

पंजाब देश पावन कर्ता पूज्य श्री सोहन लालजी, महात्मा श्री माधव मुनिजी, शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी, तपस्वीजी माणकचन्दजी, कवीवर श्री अमी ऋषिजी, सुवक्ता श्री दौलत ऋषिजी पं. श्री नथमलजी पं श्री जोरावरमलजी कविवर श्री नानचन्द्रजी प्रवर्तिनी सतीजी श्री पार्वतीजी गुणज्ञ सतीजी श्री रंभाजी चोराजी सर्वज्ञ भंडार, भीना सरवाके कनीरामजी बहादरमलजी बाँठीया, कीतवी भंडार, कुचेरा भंडार, इत्यादिक की तरफ से शास्त्रों व सम्मति द्वारा इस कार्य को बहुत सहायता मिली है इस लिये इन का भी बहुत उपकार मानते हैं

आभारी महात्मा

कच्छ देश पावन कर्ता मोटी पक्ष के परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्यवर्य महात्मा कविवर्य श्री नागचन्द्रजी महाराज!
इस शास्त्रोद्धार कार्य में आद्योपान्त आप श्री शाचिन शुद्ध शास्त्र, हुंडी, गुटका और समय २पर आवश्यकीय शुभ सम्मति द्वारा मदद देते रहनेसेही मैं इस कार्य को पूर्ण कर सका इस लिये केवल मैं ही नहीं परन्तु जो जो भव्य इन शास्त्रोद्वारा लाभ प्राप्त करेंगे वे सब ही आप के आभारी होंगे

आपका अमोल ऋषि

हिन्दी भाषानुवादक

सुद्धाचारी पूज्य श्री खूबा ऋषिजी महाराज के शिष्यवर्य, आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी महाराजके शिष्यवर्य बालब्रह्मचारी पण्डित मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज! आपने बडे साहस से शास्त्रोद्धार जैसे महा परिश्रम वाले कार्य का जिस उत्साहसे स्वीकार किया था उस ही उत्साह से तीन वर्ष जितने स्वल्प समय में अहर्निश काम को अच्छा बनाने के शुभाशय से सदैव एक भक्त भोजन और दिन के सात घंटे लेखन में व्यतीत कर पूर्ण किया और ऐसा सरल बना दिया कि कोई भी हिन्दी भाषा सहज में समझ सके, ऐसे ज्ञानदान के महा उपकार तले दबे हुए हम आप के बड आभारी हैं

संघकी तर्फ से

सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद

दक्षिण हैद्राबाद निवासी जौहरी वर्ग में श्रेष्ठ दृढधर्मी दानवीर राजा बहादुर लालाजी साहेब श्री सुखदेव सहायजी ज्वालाप्रसादजी!

आपने साधु सेवा व और ज्ञान दान जैसे महा लाभके लोभी बन जैन साधुमार्गीय धर्म के परम माननीय व परम आदरणीय बत्तीस शास्त्रों को हिन्दी भाषानुवाद सहित छपाने को रु २००००, का खर्चकर अमूल्य देना स्वीकार किया और युरोप युद्धारंभ से सब वस्तु के भाव में वृद्धि होने से रु ४०००० के खर्च में भी काम पूरा होनेका संभव नहीं होते भी आपने उस ही उत्साह से काम को समाप्त कर सबको अमूल्य महालाभ दिया, यह आप की उदारता साधुमार्गीयों को गौरव दर्शक व परमादरणीय है!

मोरवी (काठीयावाड) निवासी धर्म प्रेमी कार्यदक्ष कृतज्ञ मणिलाल शिवलाल शेठ! इन्होंने जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम में संस्कृत प्राकृत व अंग्रेजी का अभ्यास कर तीन वर्ष उपदेशक रह अच्छी कौशल्यता प्राप्त की इन से शास्त्रोद्धार का काम अच्छा होगा ऐसी सूचना गुरुवर्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज से मिलने से इन को बोलाय, इन्होंने भी प्रेस में शुद्ध अच्छा और शीघ्र काम होता नहीं देख शास्त्रोद्धार प्रेस कायम किया और प्रेस के कर्मचारियों को उत्साही कार्यदक्ष बना काम लिया तैसे ही भाषानुवाद की प्रेसकॉपी बनाइ यद्यपि यह भार उठा रहे थे तथापि इन्होंने इस काम की सेवा वेतन के प्रमाण से अधिक की इस लिये इनको भी धन्यवाद देते हैं

शास्त्रोद्धार प्रारंभ

वीराब्द २४४२ ज्ञान पचमी

इति
दशवैकालिक सूत्र
समाप्तम्

शास्त्रोद्धार समाप्ति

वीराब्द २४४६ विजयादशमी